Digitized by eGangotri

भारत की श्रेष्ठ लोक-कथाएँ

महेश भारद्वाज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भारत की श्रेष्ठ लोक कथाएं

महेश भारद्वाज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दो शब्द

महाराज विक्रमादित्य एक परमोज्ज्वल नक्षत्र थे। उनके गुणों को लेकर अनेक दंतकथाएं और लोककथाएं प्रचलित हैं। यद्यपि उन कथाओं में चमत्कार है, पर वे बड़ी प्रेरक और शिक्षाप्रद हैं।

यहां हमने उन्हीं कथाओं में से चुनी हुई 26 कथाओं को नया रंग और नया वेश दिया है। कथाएं वही हैं, पर नया रंग देने के कारण वे नये जीवन के अधिक अनुकूल हो गई हैं।

इन कथाओं से बालकों का मनोरंजन तो होगा ही; उन्हें दया, साहस, ममता और न्याय की ओर बढ़ने की प्रेरणा भी मिलेगी।

आशा है, बालकों की उन्नति चाहने वाले समाज के विवेकवान लोग इन कथाओं को बालकों तक पहुंचायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अनुक्रम

1.	तुला-लग्न का महल	7
2.	भाग्य बड़ा है या बल	11
3.	सूर्य का कुंडल	16
4.	अनोखा दान	19
5.	लड़की का उद्धार	23
6.	स्वर्ण-मोहरों की थैली	27
7.	बटुए का दान	33
8.	विश्वासघात का फल	36
9.	बहुमूल्य उड़नखटोला	43
10.	शेषनाग की मणियां	46
11.	ज्योतिषी ब्राह्मण	50
12.	चोरों को दण्ड	54
13.	बलि का कवच	58
14.	बुद्धि का चमत्कार	62
15.	स्त्री किसकी है	68
16.	वीरवर की स्वामी-भक्ति	72
17.	दुष्टता का फल	77
18.	धोबी की स्त्री	81
19.	स्वामी और सेवक	86
20.	धर्म-रक्षा	91
21.	राजा की वीरता	96
22.	चोर की पत्नी	101
23.	धर्मव्रती राजा	107
24.	प्राणदान	111
25.	सफलता की कुंजी	117
26.	रानी चतुरा	121

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तुला-लग्न का महल

दोपहर के पहले का समय था।

महाराज विक्रमादित्य राजसभा में राजसिंहासन पर आसीन थे। राज-काज देख रहे थे।

सहसा एक ब्राह्मण ने विक्रमादित्य के सामने पहुंचकर उनकी जय-जयकार की।

विक्रमादित्य ने ब्राह्मण को प्रणाम करते हुए कहा, ''क्या बात है, ब्राह्मण श्रेष्ठ! आप मेरी जय-जयकार क्यों कर रहे हैं?''

ब्राह्मण ने विक्रमादित्य को आशीर्वाद देते हुए कहा, ''महाराज, आप एक प्रतापी पुरुष हैं। मैं चाहता हूं, आपका प्रताप और अधिक फैले। यदि आप मेरे कहने के अनुसार कार्य करें तो आपके प्रताप का सूर्य सारे संसार में चमक उठेगा।''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''ब्राह्मण श्रेष्ठ, मुझे इस बात की बिलकुल इच्छा नहीं है कि मेरे प्रताप का सूर्य सारे संसार में चमके, पर फिर भी मैं आपकी प्रसन्नता के लिए, आपके कहने के अनुसार काम करने के लिए तैयार हूं। बताइए, मुझे क्या करना होगा?''

ब्राह्मण ने कहा, ''महाराज, आप तुला-लग्न में एक सुन्दर महल बनवा कर उसमें रहें। तुला-लग्न में बने हुए महल में रहने से आपके यश की पताका दिन दूनी, रात चौगुनी फहरेगी।''

महाराज विक्रमादित्य ने ब्राह्मण की बात मान ली। उन्होंने मंत्री को बुलाकर तुला-लग्न में सुन्दर महल बनवाने की आज्ञा दे दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महाराज विक्रमादित्य की आज्ञानुसार तुला-लग्न में महल की नींव डाली गई, पर नींव धरते ही तुला-लग्न बीत गई। काम बन्द हो गया।

जब फिर तुला-लग्न आई, तो फिर काम शुरू हुआ। इसी तरह तुला-लग्न आने पर काम शुरू होता, और खत्म होने पर काम बंद हो जाता था।

तुला-लग्न लगने पर हजारों-लाखों मजदूर काम में लग जाते थे। फिर भी महल को तैयार होने में बहुत दिन लग गए, क्योंकि तुला-लग्न जब भी आती थी, थोड़े ही समय तक रहती थी।

बहुत दिनों के बाद महल बनकर तैयार हुआ। महल क्या था, पूरा इन्द्र-भवन था। उसमें संगमरमर के पत्थर और सोने-चांदी के किवाड़ लगे थे, दीवारों में हीरे-जवाहरात लगे थे। सूर्य की किरणों से महल ऐसा चमकता था, मानो पूरा सोने-चांदी का बना हो।

महल बनने पर मंत्री ने महाराज विक्रमादित्य से निवेदन किया, "महाराज, महल बनकर तैयार हो गया है। अब आप उसमें रहना आरंभ करें।"

महाराज विक्रमादित्य एक शुभ मुहूर्त में रहने के लिए महल के भीतर गए। उनके साथ उनका ब्राह्मण पुरोहित भी था।

महाराज विक्रमादित्य महल को देखकर प्रसन्न हो उठे, पर पुरोहित के भीतर से आह की सांस निकल पड़ी।

महाराज विक्रमादित्य ने पुरोहित की ओर देखते हुए प्रश्न किया, "पुरोहित जी, इस सुन्दर महल को देखकर आपको भी मेरी ही तरह प्रसन्न होना चाहिए, पर आपके भीतर से आह की सांस क्यों निकली?"

पुरोहित ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराज, आप और हम दोनों मनुष्य हैं, पर एक आपका भाग्य है जो आप इतने सुन्दर महल में रहेंगे, और एक मेरा भाग्य है जो मुझे टूटी खाट पर सोना पड़ता है।"

पुरोहित ने अपनी बात समाप्त करते-करते पुनः आह की लम्बी सांस ली।

महाराज विक्रमादित्य मन-ही-मन सोचने लगे। कुछ देर के बाद उन्होंने शीघ्र गंगाजल और तुलसीदल लाने की आज्ञा दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महाराज़ विक्रमादित्य ने हाथ में गंगाजल और तुलसीदल लेकर कहा, ''पुरोहित जी, आप दुखी न हों। मैं यह महल आपको दान कर रहा हूं। आज से यह महल आपका है।''

महाराज विक्रमादित्य ने गंगाजल और तुलसीदल पुरोहित के हाथ में दे दिया।

पुरोहित की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। वह अपने बाल-बच्चों के साथ महल में रहने के लिए गया।

पहले दिन की रात थी। पुरोहित महल में सोने के पलंग पर गाढ़ी नींद में सो रहा था।

सहसा लक्ष्मी ने प्रकट होकर आवाज दी, ''पुरोहित, तुम तुला-लग्न में बने हुए मकान के मालिक हो। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं। बताओ, मैं क्या करूं?''

पुरोहित की नींद खुल गई। उसने देखा, उसके सामने एक वृद्धा स्त्री खड़ी है। लक्ष्मी जी वृद्धा स्त्री के वेश में थीं।

पुरोहित डर गया। उसने मखमली चादर से अपना मुंह छिपा लिया।

लक्ष्मी जी चली गईं।

दो-तीन घण्टे के बाद फिर लक्ष्मी जी आईं। उन्होंने फिर कहा, ''पुरोहित देवता, मैं बहुत प्रसन्न हूं। बताओ, मैं क्या कर करूं?''

पुरोहित ने लक्ष्मी जी को देखा। उनका वृद्ध शरीर था। सिर पर पके-पके बाल थे, मुंह के दांत टूट गये थे। वे लक्ष्मी होने पर भी डरावनी लग रही थीं।

पुरोहित के तो प्राण निकल गये। उसकी घिग्घी बंध गई। वह 'ऊं-ऊं, गूं-गूं' करने लगा।

लक्ष्मी जी चली गईं।

किसी तरह रात बीती। सवेरा होते ही पुरोहित महाराज विक्रमादित्य की सेवा में उपस्थित हुआ।

पुरोहित ने हाथ जोड़कर महाराज विक्रमादित्य से कहा, ''महाराज, हम उस महल में नहीं रहेंगे। मैं अपनी प्रसन्नता से आपके दान को लौटा रहा हूं।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महाराज विक्रमादित्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बड़े ही आश्चर्य के साथ पूछा, ''आखिर, क्यों? आप इतने सुन्दर महल में क्यों नहीं रहेंगे?''

पुरोहित ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, ''महाराज, उस महल में भूत रहते हैं। हम उस महल में नहीं रहेंगे। आप अपना दान वापस ले लें।''

महाराज विक्रमादित्य मुस्करा उठे। पुरोहित ने उनका दान उन्हें लौटा दिया।

विक्रमादित्य ने मंत्री को बुलाकर हुक्म दिया, ''मैंने पुरोहित को नया महल दान में दिया था, पर उसने महल लेने से इसलिए इन्कार कर दिया कि उसमें भूत रहते हैं। महल बनाने में जितना रुपया लगा है, उतना रुपया पुरोहित को दे दिया जाए; क्योंकि मैं महल को दान में दे चुका हूं।''

पुरोहित को महल की पूरी लागत दे दी गई।

अब विक्रमादित्य स्वयं उस महल में रहने के लिए गये।

विक्रमादित्य रात में महल में सोने के पलंग पर सोये। उनके सामने लक्ष्मी जी प्रकट हुईं। लक्ष्मी जी सुन्दर वेश में थीं।

लक्ष्मी जी ने कहा, ''महाराज, मैं आपके दान और ऊंचे विचारों से बहुत प्रसन्न हूं। बताइए, मैं आपकी क्या सेवा करूं?''

विक्रमादित्य ने आंखें खोलकर देखा, उनके सामने लक्ष्मी जी खड़ी थीं। लक्ष्मी ने फिर कहा, ''महाराज, मैं लक्ष्मी हूं। मैं आपके अच्छे कार्यों से बहुत प्रसन्न हूं। बताइए, मैं आपकी क्या सेवा करूं?''

विक्रमादित्य ने बड़े आदर के साथ लक्ष्मी जी को प्रणाम किया, कहा, ''यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मेरे राज्य में सोने की वर्षा करें।''

लक्ष्मी जी ने विक्रमादित्य की इच्छा पूरी की। उनके संपूर्ण राज्य में सोने की भारी वर्षा हुई।

राजा के बड़े-बड़े कर्मचारी दौड़-दौड़ कर विक्रमादित्य की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने विक्रमादित्य को खबर सुनाई, ''महाराज, अद्भुत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आश्चर्य! चारों ओर सोने की वर्षा हो रही है।''

विक्रमादित्य ने बड़े ही शान्त भाव से उत्तर दिया, ''राज्य में चारों ओर ढिंढोरा पिटवा दो, जिसकी सीमा में जितना सोना बरसे वह उसे ले ले। कोई किसी दूसरे का सोना न ले।''

विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन हुआ। ढिंढोरा पीटकर सबको राजा का आदेश सुना दिया गया।

राज्य की जनता हर्ष में डूब गई। सब लोग अपनी-अपनी सीमा में बरसे हुए सोने को बटोरने लगे।

सोने को पाकर, राज्य के सभी लोग सुख से जीवन बिताने लगे, विक्रमादित्य को आशीर्वाद देने लगे।

पर विक्रमादित्य को यश, वरदान और आशीर्वाद से कोई मतलब नहीं था। उन्हें मतलब था प्रजा की भलाई से, परोपकार से।

व्रिकमादित्य को प्रजा की भलाई से, परोपकार से जितना सुख मिलता था, उतना यश, वरदान और गुणवान से नहीं मिलता था— बिलकुल नहीं मिलता था।

2

भाग्य बड़ा है या बल?

एक गांव में दो ब्राह्मण रहते थे। दोनों पड़ोसी थे।

एक दिन दोनों ब्राह्मणों में बहस छिड़ गई— भाग्य बड़ा है या बल? एक कहता था, भाग्य बड़ा है; दूसरा कहता था, नहीं बल बड़ा है।

दोनों में देर तक बहस चलती रही।

जब कुछ निपटारा न हुआ, तो दोनों ब्राह्मण स्वर्ग के राजा इन्द्र के पास गए। उन्होंने इन्द्र के सामने अपना प्रश्न रखा, ''कृपा कर आप बतायें, भाग्य बड़ा है या बल?''

पर इन्द्र से भी यह प्रश्न हल न हो सका। उसने कहा, ''इस प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

का ठीक-ठीक उत्तर पृथ्वी के राजा विक्रमादित्य को छोड़कर और कोई नहीं दे सकता।''

दोनों ब्राह्मण विक्रमादित्य की राजसभा में उपस्थित हुए। उन्होंने विक्रमादित्य के सामने अपना प्रश्न रखा, ''महाराज, आप पृथ्वी पर सब से बढ़कर ज्ञानी हैं। कृपया आप बतायें, भाग्य बड़ा है या बल?''

विक्रमादित्य विचारों में डूब गए।

कुछ देर बाद, विक्रमादित्य ने सोचते हुए कहा, ''इस समय तुम दोनों जाओ। ठीक छः मास बाद फिर आना। तब मैं बताऊंगा, भाग्य बड़ा है या बल?''

दोनों ब्राह्मण अपने घर लौट गए।

विक्रमादित्य ने मन-ही-मन बड़ा सोच-विचार किया, पर वे किसी नतीजे पर नहीं पहुंच सके— भाग्य और बल, दोनों में कौन सब से बड़ा है?

पर विक्रमादित्य को यह प्रश्न हल करना था, क्योंकि वे दोनों ब्राह्मणों को, उत्तर देने का वचन दे चुके थे।

विक्रमादित्य राज-काज मंत्रियों को सौंपकर, प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ने के लिए, वेश बदल कर बाहर निकल पड़े।

विक्रमादित्य एक नगर में, एक बहुत बड़े सेठ के पास पहुंचे। उन्होंने सेठ से प्रार्थना की, वह उन्हें नौकर रख ले।

सेठ ने पूछा, ''कौन-सा काम करोगे? कितना वेतन लोगे?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''मैं एक लाख रुपये मासिक लूंगा। जो काम कोई नहीं कर सकेगा, मैं उसे करूंगा।''

सेठ ने विक्रमादित्य को नौकर रख लिया।

विक्रमादित्य को जब पहले मास का वेतन मिला, तो उन्होंने कुछ धन खाने-पीने के लिए रखकर, बाकी सब दान-पुण्य में खर्च कर दिया।

इसी तरह कई मास बीत गए। विक्रमादित्य को हर महीने लाख रुपये मिलते। वे अपने निर्वाह के लिए रखकर, शेष सब रुपये दान-पुण्य में खर्च कर दिया करते थे।

काम उन्हें कुछ भी नहीं करना पड़ता था। विक्रमादित्य बड़े प्रसन्न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हुए। उन्होंने सोचा, भाग्य का कैसा चमत्कार है! काम कुछ नहीं, पर वेतन में मिलते हैं लाख रुपये।

कुछ दिनों के बाद सेठ व्यापार के लिए विदेश गया। उसके साथ विक्रमादित्य भी विदेश गए।

कुछ काल बाद सेठ बहुत-सा माल जहाज पर लादकर, अपने घर की ओर लौट रहा था। सहसा उसका जहाज समुद्र के जंगल में फंस गया। उसने बड़ी-बड़ी मन्नतें मांगीं, भगवान से बहुत प्रार्थनाएं कीं, पर जहाज टस-से-मस न हुआ।

जहाज पर विक्रमादित्य भी थे। सेठ ने विक्रमादित्य से कहा, ''तुमने कहा था, जो काम कोई नहीं कर सकेगा, उसे तुम करोगे। मेरा जहाज टस-से-मस नहीं हो रहा है। तुम किसी तरह मेरे जहाज को बाहर निकालो।''

विक्रमादित्य शीघ्र ही जहाज की रस्सी पकड़कर, हाथ में तलवार लेकर समुद्र में उतर पड़े।

विक्रमादित्य ने समुद्र में डुबकी लगाकर देखा, तो जहाज समुद्री झाड़ियों में फंसा हुआ था।

विक्रमादित्य ने तलवार से समुद्री झाड़ियां काट डालीं।

जहाज चल पड़ा, पर विक्रमादित्य के हाथ की रस्सी छूट गई। वह समुद्र में बह गए।

जहाज तो चला गया, पर विक्रमादित्य समुद्र में तैरने लगे। वह साहस से तैरते-तैरते एक ऐसे द्वीप में पहुंचे, जहां स्त्रियों का राज्य था, जहां कोई पुरुष नहीं था।

उस राज्य की रानी का नाम अम्बावती था। वह कुमारी थी। उसे किसी योगी ने बताया था कि एक दिन उज्जैन के राजा विक्रमादित्य तैर कर यहां आयेंगे। वही तुम्हारे पति होंगे।

अम्बावती बड़ी उत्सुकता से विक्रमादित्य का रास्ता देख रही थी।

विक्रमादित्य जब तैरकर अम्बावती के नगर में पहुंचे, तो उसकी सेविकाओं ने एक तेजस्वी पुरुष के आने की सूचना उसे दी।

अम्बावती ने बड़े आदर से विक्रमादित्य को अपने दरबार में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बुलाया। वह उन्हें देखते ही पहचान गई, क्योंकि योगी के कहने के अनुसार विक्रमादित्य को छोड़कर उसके नगर में कोई दूसरा पुरुष नहीं आ सकता था।

अम्बावती ने विक्रमादित्य के साथ विवाह कर लिया।

विक्रमादित्य अम्बावती के महल में रहने लगे।

अम्बावती तंत्र-मंत्र जानती थी। उसने तंत्र-मंत्र से विक्रमादित्य को अपने वश में कर लिया। वह राज्य और अपनी प्रजा को बिलकुल भूल गए। वह यह भी भूल गए कि वे किस उद्देश्य से बाहर निकले हैं।

अम्बावती की दासी सुधर्मा विक्रमादित्य के लिए रोज पान के बीड़े लगाया करती थी। विक्रमादित्य जब खाना खाकर आराम करने लगते, तो वह उनके पास पान के बीड़े लेकर जाती थी।

सुधर्मा जब भी विक्रमादित्य के पास पान के बीड़े लेकर जाती थी, उसकी आंखों में आंसू होते थे।

एक दिन विक्रमादित्य ने सुधर्मा से पूछा, ''सुधर्मा, जब भी तू मेरे पास पान के बीड़े लेकर आती है, तेरी आंखों में आंसू रहते हैं। बताओ, तुम्हारी आंखों में आंसू क्यों रहते हैं?''

पहले तो सुधर्मा ने कुछ उत्तर न दिया, पर जब विक्रमादित्य ने अधिक हठ के साथ पूछा, तो उसने कहा, ''महाराज, ये मेरे आंसू आपके लिए हैं। आप एक धार्मिक प्रतापी राजा हैं। आपकी प्रजा आपका रास्ता देख रही है, पर आप यहां अम्बावती के जाल में फंसकर, अपना कर्तव्य भूल गए हैं। अम्बावती तंत्र-मंत्र जानती है। अब आपका यहां से छुटकारा कभी न होगा।''

विक्रमादित्य के मन में ज्ञान पैदा हो गया। उन्होंने सुधर्मा से पूछा, ''आखिर कोई ऐसा उपाय है, जिससे मैं यहां से जा सकता हूं।''

सुधर्मा ने जवाब दिया, ''हां, एक उपाय है, महाराज! अम्बावती की घुड़साल में श्यामकर्ण घोड़ा है। उसका सारा शरीर तो सफेद है, पर दोनों कान काले हैं। आप उसकी पीठ पर बैठकर कहें—चल श्यामकर्ण, उज्जैन चल, तो वह आपको उज्जैन पहुंचा देगा। श्यामकर्ण को छोड़कर, दूसरा कोई आपको उज्जैन नहीं पहुंचा सकता।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विक्रमादित्य उसी दिन से रोज घुड़साल में जाकर घोड़ों को देखने लगे। उनके साथ अम्बावती भी होती थी।

एक दिन विक्रमादित्य ने अम्बावती से कहा, ''विक्रमादित्य, आओ, हम दोनों एकसाथ ही श्यामकर्ण की सवारी करें।''

अम्बावती तैयार हो गई क्योंकि वह इस संबंध में बिलकुल निश्चिंत थी कि श्यामकर्ण घोड़े का भेद विक्रमादित्य को मालूम नहीं है।

अम्बावती विक्रमादित्य के साथ घोड़े की पीठ पर जा बैठी।

विक्रमादित्य ने घोड़े की पीठ पर बैठते ही जोर से एड़ लगाई और कहा, ''चल बेटा श्यामकर्ण, उज्जैन चल।''

घोड़ा उड़ चला। अम्बावती ने बाधा डालने का यत्न किया। विक्रमादित्य ने साहस से काम लिया। उन्होंने उसे समुद्र में गिरा दिया। वह समुद्र में डूब गई।

श्यामकर्ण विक्रमादित्य को लेकर उज्जैन पहुंचा।

सारी उज्जैन नगरी, अपने राजा को पाकर हर्ष से नाच उठी। विक्रमादित्य राजसिंहासन पर बैठकर फिर अपनी प्रजा को सुख देने लगे।

अनेक मास बीत गए थे। एक दिन दोनों ब्राह्मण फिर विक्रमादित्य की राजसभा में उपस्थित हुए। उन्होंने विक्रमादित्य से कहा, ''महाराज, कितने ही महीने बीत गए। आप अब यह बतायें, भाग्य और बल— दोनों में कौन बड़ा है?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''दोनों में कोई बड़ा-छोटा नहीं, दोनों बराबर हैं।''

विक्रमादित्य ने प्रमाण में अपनी पूरी कहानी ब्राह्मणों को सुना दी। उन्होंने कहा, ''इस कहानी में भाग्य और बल— दोनों का चमत्कार है।''

दोनों ब्राह्मण विक्रमादित्य की बहुत-बहुत प्रशंसा करते हुए अपने घर चले गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

3

सूर्य का कुण्डल

सवेरे के बाद का समय था।

विक्रमादित्य यज्ञशाला में हवन-जप कर रहे थे। एक ब्राह्मण उनके सामने उपस्थित हुआ।

विक्रमादित्य ने ब्राह्मण को बड़े आदर से बिठाया। उन्होंने ब्राह्मण से विनयपूर्वक पूछा, ''कहिए ब्राह्मण श्रेष्ठ, आपको क्या चाहिए?''

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, ''महाराज, मुझे कुछ चाहिए नहीं। मैं तो आपको एक ऐसी भेद की बात बताने आया हूं, जिसे मुझे छोड़कर और कोई नहीं जानता।''

विक्रमादित्य ने उत्सुक होकर कहा, ''कहिए, वह कौन-सी भेद की बात है।''

ब्राह्मण ने कहा, ''महाराज, हिमालय की तराई में कमलों का एक तालाब है। उसमें सोने का एक स्तम्भ है। वह सूर्योदय होने पर पानी से ऊपर उठता है। ज्यों-ज्यों सूर्य ऊपर उठता है, त्यों-त्यों वह स्तम्भ भी ऊपर उठता है। इतना ऊपर उठता है कि सूर्य के पास पहुंच जाता है। फिर ज्यों-ज्यों सूर्य ढलने लगता है, स्तम्भ भी घटने लगता है। संध्या होते-होते वह फिर पानी में समा जाता है।''

ब्राह्मण विक्रमादित्य के मन में उत्सुकता पैदा करके चला गया।

विक्रमादित्य उस सोने के स्तम्भ को देखने के लिए उत्कंठित हो उठे, पर उसे देखें तो किस तरह देखें? ब्राह्मण के कहने के अनुसार वह सरोवर, जिसमें स्तम्भ था, हिमालय की तराई में था। हिमालय की तराई उज्जैन से बहुत दूर थी।

पर विक्रमादित्य के मन में, स्तम्भ को देखने की उत्कंठा पूरी तरह से पैदा हो चुकी थी।

विक्रमादित्य ने ताल-वैताल को याद दिया।

ताल-वैताल—दो देव थे। दोनों बड़े बलवान थे। दोनों न होने वाले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कामों को भी करने की शक्ति रखते थे। विक्रमादित्य की वीरता, उनके दान-पुण्य, और उनके अच्छे कार्यों के कारण दोनों के कारण दोनों देव उनके वश में थे।

विक्रमादित्य के याद करने पर दोनों देव उनकी सेवा में उपस्थित हुए।

देवों ने कहा, ''महाराज, आपने हमें क्यों याद किया? कहिए, हम आपके लिए कौन-सा काम करें?''

विक्रमादित्य ने कहा, ''हिमालय की तराई में कमलों का एक सुन्दर सरोवर है। तुम हमें उस सरोवर के पास पहुंचा दो।''

ताल-वैताल ने व्रिक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया। अपने कंधे पर बिठाकर उन्हें हिमालय की तराई में कमलों के सरोवर के पास पहुंचा दिया।

दोपहर का समय था। सरोवर में रंग-रंग के कमल खिले हुए थे। रह-रहकर भौंरे गुंजार कर रहे थे, रह-रहकर सुगंध उठ रही थी। सोने का स्तम्भ ऊपर उठकर सूर्य के पास पहुंच चुका था।

विक्रमादित्य उस अनोखे दृश्य को देखकर आश्चर्य में डूब गए। वह टकटकी लगाकर सोने के स्तम्भ की ओर देखने लगे।

विक्रमादित्य ताल-वैताल के साथ सरोवर के पास ही छिप गए। उन्होंने बड़े आश्चर्य के साथ उस दृश्य को भी देखा, जब सूर्य के ढलने के साथ ही साथ स्तम्भ घटने लगा, और घटते-घटते संध्या समय सरोवर के पानी में समा गया।

दूसरे दिन सवेरा हुआ। सूर्योदय होने पर सोने का स्तम्भ फिर जल से ऊपर उठा।

विक्रमादित्य ने ताल-वैताल से कहा, ''तुम हमें उस स्तम्भ के ऊपर बिठाकर लौट जाओ। जब जरूरत होगी तब फिर हम तुम्हें याद करेंगे।''

ताल-वैताल ने विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया। वे उन्हें सोने के स्तम्भ के ऊपर बिठा कर लौट गए।

सूर्य भगवान धीरे-धीरे ऊपर उठने लगे। उनके ऊपर उठने के साथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ही साथ सोने का स्तम्भ भी ऊपर उठने लगा। ज्यों-ज्यों सोने का स्तम्भ ऊपर उठने लगा, त्यों-त्यों गरमी भी पड़ने लगी।

सोने का स्तम्भ जब सूर्य भगवान के पास पहुंचा, तो भयानक गरमी से विक्रमादित्य का शरीर जल गया। वह निष्प्राण हो गए।

मध्य दोपहर में सोने का स्तम्भ सूर्य भगवान के रथ से जा टकराया।

सूर्य भगवान ने अपना रथ रोक दिया। वह रोज दोपहर में, इसी तरह अपना रथ रोककर, सोने के उस स्तम्भ पर बैठकर खाना खाया करते थे।

उस दिन जब सूर्य भगवान् अपना रथ रोककर खाना खाने के लिए सोने के स्तम्भ पर उतरे, तो वहां एक मनुष्य के शव को देखकर आश्चर्य में डूब गए।

सूर्य भगवान मन-ही-मन सोचने लगे, यह मनुष्य इस स्तम्भ पर कैसे आया? यह अवश्य कोई महान तेजस्वी और प्रतापी मनुष्य है, क्योंकि किसी भी साधारण मनुष्य की इस स्तम्भ तक पहुंच नहीं हो सकती।

सूर्य भगवान के मन में दया पैदा हो उठी। उन्होंने अपने कमण्डल में से अमृत लेकर विक्रमादित्य पर छिड़क दिया।

विक्रमादित्य जीवित हो उठे। उनका शरीर फिर पहले की तरह सुन्दर हो गया।

विक्रमादित्य ने बड़े आश्चर्य से देखा, सूर्य भगवान अपने रथ के साथ उनके सामने खड़े थे।

विक्रमादित्य ने बड़े आदर से सूर्य भगवान को प्रणाम किया, दोनों हाथ जोड़कर कहा, ''प्रभो, मैं बड़ा भाग्यशाली हूं जो अपनी मनुष्य की आंखों से आपका दर्शन कर रहा हूं।''

विक्रमादित्य की श्रद्धा और प्रेम को देखकर सूर्य भगवान प्रसन्न हो गए। उन्होंने प्रश्न किया, ''तुम कौन हो? इस स्तम्भ के ऊपर तुम किस तरह आये?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''प्रभो, मैं उज्जैन का राजा विक्रमाजीत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हूं। मैं ताल-वैताल नामक देवों की सहायता से इस स्तम्भ के ऊपर आया हूं।''

सूर्य भगवान मुस्करा उठे।

सूर्य भगवान ने मुस्कराते हुए कहा, ''तो तुम्हीं पृथ्वी के दानी राजा विक्रमाजीत हो! तुम सचमुच मनुष्यों में देवताओं के समान हो। यदि तुम अपने अच्छे कर्मों से देवता न बन गए होते तो सोने के इस स्तम्भ तक कभी नहीं पहुंच पाते। कोई भी साधारण आदमी इस स्तम्भ तक नहीं पहुंच सकता।''

सूर्य भगवान ने और आगे कहा, ''मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं। मैं तुम्हें सोने का एक कुण्डल और 'आदित्य' की उपाधि दे रहा हूं। जब तुम कुण्डल और आदित्य की उपाधि धारण करके राजसिंहासन पर बैठोगे, तो मेरे समान ही प्रकाशवान बनोगे।''

सूर्य भगवान विक्रमादित्य को सोने का कुण्डल और आदित्य की उपाधि देकर चले गए।

विक्रमादित्य सोने के स्तम्भ के साथ-साथ फिर नीचे सरोवर में पहुंचे। उन्होंने फिर ताल-वैताल को याद किया। ताल-वैताल शीघ्र ही उपस्थित हुए। उन्होंने विक्रमादित्य को फिर उज्जैन पहुंचा दिया।

विक्रमाजीत सोने का कुण्डल पहन कर 'आदित्य' की उपाधि धारण करके सिंहासन पर बैठे।

'आदित्य' की उपाधि धारण करने पर विक्रमाज़ीत 'विक्रमादित्य' कहलाने लगे। वे सचमुच सूर्य के समान प्रकाशवान हुए।

4

अनोखा दान

वसन्त के दिन थे।

बगीचे में तरह-तरह के फूल खिले हुए थे। फूलों पर भौंरे गुंजार कर रहे थे। हवा में रह-रहकर सुगंध उड़ रही थी। पेड़ों की डालियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर तरह-तरह के पक्षी मीठे-मीठे स्वरों में बोल रहे थे। बगीचे में आनंद का सागर लहरा रहा था।

विक्रमादित्य बगीचे में घूम रहे थे, फूलों से मनोविनोद कर रहे थे।

सहसा एक मनुष्य बगीचे में उपस्थित हुआ। उस मनुष्य का मुख कुम्हलाया हुआ था, आंखें सूनी और उदास थीं। उसके सिर पर रूखे-रूखे बाल थे। वह नंगे पैर था, फटे कपड़े पहने हुए था।

वह मनुष्य विक्रमादित्य के पास पहुंच कर उनके पैरों पर गिर पड़ा, दुख-भरी आवाज में बोला, ''महाराज, मैं आपकी शरण में हूं। दया करके मुझे दुख से उबारिए।''

विक्रमादित्य ने बड़े प्रेम से उसे उठाया, उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, ''तुम किसी तरह की चिंता न करो। मैं अपने प्राण भी देकर तुम्हें दुखों से छुड़ाऊंगा। बताओ, तुम कौन हो? तुम्हें कौन-सा दुख है?''

मनुष्य ने दुख-भरे स्वर में कहा, ''महाराज, मैं कालिंजर का रहने वाला एक क्षत्रिय-कुमार हूं। मेरा नाम अभयराज है। मेरा पिता एक साधारण किसान है।

''एक दिन एक योगी मेरे घर आया। उसने मुझसे कहा, 'रूपनगर के राजा की लड़की बड़ी सुन्दर और भाग्यशालिनी है। उस जैसी सुन्दर और भाग्यशालिनी लड़की तीनों लोक में दूसरी कोई नहीं है। जिस किसी पुरुष के साथ उसका विवाह होगा, वह बड़ा यशवान बनेगा।'

''योगी की बात सुनकर मेरे मन में लालच पैदा हो उठा। मैंने योगी के पैरों को पकड़ कर कहा, 'महाराज, कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे उस लड़की के साथ मेरा विवाह हो सके।'

''योगी ने उत्तर दिया, 'यह बड़ा कठिन काम है। रूपनगर के राजा ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए स्वयंवर किया है। स्वयंवर-सभा में एक कड़ाह आग पर रखा हुआ है। कड़ाह में तेल खौल रहा है। राजा का कहना है, जो खौलते हुए तेल में कूदकर सही-सलामत बाहर निकल आयेगा, उसी के साथ उसकी लड़की का विवाह होगा।'

''देश-देश के राजा, लड़की की सुंदरता से खिंचकर उसके साथ विवाह करने के लिए आते हैं, पर अपना-सा मुंह लेकर लौट जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

खौलते हुए तेल में कूदने का साहस किसी में नहीं होता।

''जो कोई साहस करके कूदता है, वह जलकर मर जाता है।

''बेचारी लड़की हाथ में वरमाल लिये हुए अब तक निराश बैठी है।

''महाराज, योगी तो चला गया, पर मेरे मन में तूफान पैदा हो गया। मैं अपनेआप को संभाल न सका।

''मैं स्वयं रूपनगर गया! मैंने लड़की को देखा, लड़की के स्वयंवर को देखा। उस कड़ाह को भी देखा, जिसमें तेल खौल रहा था।

''लड़की को देखकर मैं उस पर तन-मन से निछावर हो गया; पर खौलते हुए तेल में कूदने का साहस मुझमें नहीं हुआ। मैं निराश होकर लौट आया।

''पर वह लड़की मेरे मन में समा गई है। मुझे खाना-पीना, काम-काज कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मैं इधर से उधर मारा-मारा घूमता-फिरता हूं। महाराज, मेरी समझ में नहीं आता, मैं क्या करूं? कैसे इस दुख से छुटकारा पाऊं?''

विक्रमादित्य ने अभयराज को धैर्य बंधाया, कहा, ''तुम चिन्ता न करो। मेरे साथ राजमहल में चलो। भगवान की दया होगी, तो तुम दुख से छूट जाओगे।''

विक्रमादित्य अभयराज को अपने महल में ले गए।

रात हुई। विक्रमादित्य ने नाच-गाने का प्रबन्ध किया। उन्होंने एक-से-एक बढ़कर सुन्दर नर्तकियों और गायिकाओं को बुलाया।

नर्तकियां और गायिकाएं अपना-अपना चमत्कार दिखाने लगीं। विक्रमादित्य ने अभयराज से कहा, ''तुम रूपनगर की राजकुमारी को भूल जाओ। तुम इनमें से किसी के भी साथ विवाह कर सकते हो।''

अभयराज विक्रमादित्य के चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा, ''महाराज, मैं क्षत्रिय-कुमार हूं। मैं विवाह करूंगा तो रूपनगर की राजकुमारी के ही साथ करूंगा, नहीं तो आजीवन क्वारा रहूंगा।''

विक्रमादित्य प्रसन्न हो उठे। उन्होंने अभयराज के मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा, ''तुम वीर और दृढ़प्रतिज्ञ हो। तुम्हारी अभिलाषा अवश्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पूर्ण होगी।''

विक्रमादित्य ने दूसरे दिन ताल-वैताल को याद किया।

ताल-वैताल शीघ्र ही सेवा में उपस्थित हुआ। विक्रमादित्य ने उनसे कहा, ''हमें रूपनगर में उस जगह पहुंचा दो, जहां रूपनगर की राजकुमार का स्वयंवर हो रहा है।''

विक्रमादित्य अभयराज के साथ सिंहासन पर बैठ गये। ताल-वैताल ने उन्हें सिंहासन-सहित रूपनगर पहुंचा दिया।

विक्रमादित्य ने स्वयंवर-सभा में पहुंच कर राजकुमारी को देखा। राजकुमारी सचमुच अप्सरा थी, पर उदास थी। उसके हाथ की वरमाला सूखती जा रही थी, पर उसे कोई वर नहीं मिल रहा था।

स्वयंवर-सभा में देश-देश के एक-से-एक बढ़ कर वीर राजा इकट्ठे थे, पर किसी में खौलते हुए तेल में कूदने का साहस नहीं हो रहा था।

विक्रमादित्य के मन का साहस और पौरुष जाग उठा। उन्होंने ताल-वैताल से कहा, ''मैं खौलते हुए तेल में कूदूंगा। मैं अवश्य अभयराज के दुख को दूर करूंगा।''

विक्रमादित्य खौलते हुए तेल में कूद पड़े।

खौलते हुए तेल में कूदने से विक्रमादित्य की मृत्यु हो गई, पर ताल-वैताल ने शीघ्र ही अमृत छिड़क कर उन्हें जीवित कर दिया।

विक्रमादित्य सही-सलामत खौलते हुए तेल से बाहर निकल आये। सारी स्वयंवर-सभा उनकी जय-जयकार से गूंज उठी।

राजकुमारी ने वरमाला विक्रमादित्य के गले में डाल दी।

रूपनगर के राजा ने बड़ी धूमधाम से अपनी कन्या का विवाह विक्रमादित्य के साथ कर दिया। उसने दहेज में इतना अधिक धन दिया कि उस धन को देख कर स्वयं कुबेर के मन में भी ईर्ष्या पैदा होती थी।

पर विक्रमादित्य ने राजकुमारी-सहित उस धन को अभयराज को दे दिया। उन्होंने राजकुमारी से कहा, ''राजकुमारी, अभयराज ही तुम्हारा स्वामी है, क्योंकि मैं इसके साथ तुम्हारा विवाह कराने के लिए ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

खौलते हुए तेल में कूदा था।''

विक्रमादित्य के इस अनोखे दान ने उनके यश को चमका दिया—चांद-सूरज की तरह चमका दिया।

5

लड़की का उद्धार

रात का समय था।

उज्जैन में विक्रमादित्य अपने महल में सो रहे थे। सहसा किसी के रोने की आवाज से उनकी नींद खुल गई। वह ध्यान लगाकर रोने की उस आवाज को सुनने लगे।

आवाज बड़ी दूर से आ रही थी।

कोई बड़े ही करुणा-भरे स्वर में रो-रोकर कह रहा था, ''बचाओ, बचाओ! कोई है, कोई है!''

आवाज रह-रहकर आ रही थी। ऐसा लग रहा था, जैसे कोई किसी को सता रहा हो।

विक्रमादित्य के हृदय में दया उमड़ उठी। वह ढाल-तलवार लेकर महल से निकल पड़े। वह उसी ओर चल पड़े, जिस ओर से आवाज आ रही थी।

विक्रमादित्य आवाज के सहारे वन में जा पहुंचे।

वन में एक जगह पहुंचकर विक्रमादित्य ने देखा, एक बहुत बड़ा देव एक सुन्दर लड़की को पकड़े हुए है। लड़की उससे अपने को छुड़ाने का यत्न कर रही है। वह रह-रहकर आवाज लगा रही है, ''बचाओ, बचाओ!'' पर देव उसे नहीं छोड़ रहा है। देव के मन में लड़की के प्रति बुराई थी।

विक्रमादित्य ने देव से कहा, ''अरे, तू क्यों इस लड़की को तंग कर रहा है? उसे छोड़ दो।''

देव ने विक्रमादित्य की ओर देखते हुए कहा, ''तू कौन है जो मेरे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और इसके बीच में पड़ रहा है! मैं चाहे जो करूं, तू होता कौन है! जा, चला जा यहां से।''

देव फिर लड़की को तंग करने लगा, लड़की फिर रह-रहकर चीखने लगी, ''बचाओ, बचाओ! कोई है! कोई है!!''

विक्रमादित्य का साहस जाग उठा। उन्होंने हाथ में तलवार लेकर आगे बढ़कर कहा, ''दुष्ट, लड़की को छोड़ दे। नहीं छोड़ेगा तो मेरी तलवार तेरी सिर पर गिरेगी।''

देव ने लाल-लाल आंखों से विक्रमादित्य की ओर देखा, कहा, ''यह बात है! अच्छा, अभी मैं तुम्हें मजा चखाता हूं।''

देव लड़की को छोड़ कर विक्रमादित्य की ओर झपट पड़ा। वह उन्हें पकड़ कर खा डालना चाहता था।

पर विक्रमादित्य तो पहले से ही सजग खड़े थे। देव के झपटते ही उन्होंने तलवार चला दी। तलवार का वार भरपूर बैठा! देव का सिर कटकर जमीन पर जा गिरा।

पर देव मर कर भी नहीं मरा। उसके सिर के कटते ही, उसके शरीर से दो दूसरे देव पैदा हो उठे। वे बड़े बलवान और डरावने थे। दोनों पैदा होकर विक्रमादित्य से लड़ने लगे।

विक्रमादित्य ने एक का तो शीघ्र ही काम तमाम कर दिया, पर दूसरा मैदान में डटा रहा। वह पूरी रात-भर उनसे लड़ता रहा। पर सवेरा होते-होते दूसरे देव की हिम्मत टूट गई वह मैदान छोड़कर भाग निकला।

विक्रमादित्य ने लड़की के पास जाकर कहा, ''कन्ये, अब तुम अपने को निरापद समझो! चलो, मेरे साथ चलो! तुम जहां भी जाना चाहोगी, मैं तुम्हें बड़े आदर से पहुंचा दूंगा।''

लड़की बिलख-बिलख कर रोने लगी। उसने रोते-रोते कहा, ''नहीं, मैं निरापद नहीं हूं। मैं अब भी विपत्ति के सागर में डूब रही हूं। देव भाग जरूर गया है, पर मैं जहां भी जाऊंगी, वह मेरा पता लगा लेगा। मुझे पकड़ लायेगा।''

विक्रमादित्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बड़े ही आश्चर्य के साथ कहा, ''वह तुम्हें किस तरह पकड़ ले जाएगा! मैं उज्जैन का राजा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विक्रमादित्य हूं। मैं तुम्हें अपने महल के भीतर रखूंगा। देव का प्रवेश मेरे महल के भीतर नहीं हो सकता।''

लड़की विक्रमादित्य के पैरों पर गिर पड़ी। उसने कहा, ''मेरे अहो भाग्य! आपके दर्शन से मैं धन्य हो गई महाराज! महाराज, उस देव का प्रवेश कहीं भी हो सकता है! उसके पेट में एक मोहिनी रहती है। वह उसके बल से कहीं भी जा सकता है, किसी भी चीज का पता लगा सकता है।''

लड़की की आंखों से आंसू गिरने लगे।

विक्रमादित्य ने कहा, ''कन्ये, तुम चाहे जो भी हो, पर मेरी पुत्री की तरह हो। तुम बिलकुल मत डरो। मैं देव की मोहिनी से भी तुम्हारी रक्षा करूंगा।''

विक्रमादित्य राजधानी में न जाकर, वहीं एक कुंज में छिप कर बैठ गए, देव के आने की राह देखने लगे।

देव दिन में तो नहीं आया, पर जब रात हुई तो फिर लड़की के पास पहुंचा। वह पहले ही की तरह फिर लड़की को तंग करने लगा। लड़की फिर पहले की तरह रोने-चीखने लगी, ''बचाओ, बचाओ! कोई है, कोई है!''

विक्रमादित्य पास ही कुंज में छिपकर बैठे हुए थे। वे हाथ में तलवार लेकर बाहर निकल पड़े।

देव विक्रमादित्य को देखते ही टूट पड़ा, पर विक्रमादित्य तो पहले से ही लड़ने के लिए तैयार थे। वे तलवार संभाल कर देव से युद्ध करने लगे।

विक्रमादित्य और देव में रात-भर लड़ाई चलती रही। देव ने बड़ा छल-बल किया, पर विक्रमादित्य के साहस और शौर्य के आगे उसकी कुछ न चली। विक्रमादित्य ने अपनी तलवार से उसका सिर काट कर गिरा दिया।

देव के गिरते ही उसके शरीर से एक स्त्री निकल पड़ी, जो सचमुच मोहिनी ही थी। उसका नाम तो मोहिनी था ही, रूप-रंग भी 'मोहिनी' के ही समान था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मोहिनी देव के शरीर से निकल कर आकाश में उड़कर कहीं जाना चाहती थी, पर विक्रमादित्य ने झपट कर उसे पकड़ लिया। विक्रमादित्य ने कहा, ''मैं तुम्हें इस तरह न जाने दूंगा! पहले बताओ, तुम कौन हो? कहां जा रही हो?''

मोहिनी ने उत्तर दिया, ''मैं मोहिनी हूं, जा रही हूं, अमृत लेने के लिए। मैं अमृत लाकर इस देव को जीवित करूंगी।''

विक्रमादित्य ने आश्चर्य के साथ कहा, ''तुम इस देव को जीवित करोगी! यह तो बड़ा पापी और अत्याचारी है। पापी और अत्याचारी को जीवन-दान कभी नहीं देना चाहिए।''

मोहिनी ने उत्तर दिया, ''जानती हूं, पर विवश हूं। मुझे इस देव को जीवन-दान देना ही पड़ेगा। मुझे अमृत लाने से कोई भी नहीं रोक सकता।''

मोहिनी स्वयं को विक्रमादित्य से छुड़ा कर जाने लगी।

विक्रमादित्य ने साहस-भरे स्वर में कहा, ''तुम चाहे जो भी हो, पर तुम अमृत लाने के लिए नहीं जा सकतीं। मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा— कदापि नहीं जाने दूंगा।''

विक्रमादित्य ने शीघ्र ही ताल-वैताल को याद किया।

ताल-वैताल फौरन पहुंच कर मोहिनी के सामने खड़े हो गए।

मोहिनी ताल-वैताल को देखकर डर गई। उसने विक्रमादित्य की ओर देखते हुए कहा, ''क्या आप उज्जैन के राजा विक्रमादित्य तो नहीं हैं? क्योंकि मनुष्यों में वही एक ऐसे हैं जिनके संकेतों पर बड़े-बड़े देव भी नाचते हैं।''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''हां, मैं उज्जैन का राजा विक्रमादित्य ही हूं, पर तुम कौन हो? तुम्हारा सोने का सा रंग है, चन्द्रमा-सा रूप है। तुम इस देव के शरीर में क्यों रहती हो?''

मोहिनी ने उत्तर दिया, ''महाराज, मैं पहले कैलास पर, भगवान शंकर की सेवा में रहती थी। एक दिन मेरे मन में घमण्ड पैदा हो गया। भगवान शंकर ने मुझे अपनी सेवा से अलग करके मोहिनी का रूप प्रदान किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"इस देव ने भगवान शंकर की बड़ी तपस्या की। उन्होंने इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर मुझे इसको प्रदान कर दिया।

"भगवान शंकर ने मुझे इसे देते हुए कहा था, 'जब तुम्हारा स्पर्श पृथ्वी के प्रतापी राजा विक्रमादित्य से होगा, तब तुम शाप से छूट जाओगी।'

"महाराज, आपने मेरा उद्धार कर दिया। मैं शाप से छूट गई। अब मैं फिर कैलास जा सकती हूं, पर आप जैसे प्रतापी और धार्मिक राजा को छोड़कर मैं अब कैलास नहीं जाऊंगी। मैं अब आपके साथ रहकर आपकी ही सेवा करूंगी।"

विक्रमादित्य ने प्रसन्न होकर मोहिनी की सेवा स्वीकार कर ली।

विक्रमादित्य मोहिनी और लड़की के साथ उज्जैन लौट गए।

विक्रमादित्य ने एक सुन्दर और योग्य वर खोज कर उस लड़की का उसी तरह बड़ी धूमधाम से विवाह किया था, जिस तरह लोग अपनी लड़की का विवाह करते हैं।

6

स्वर्ण-मोहरों की थैली

विक्रमादित्य राजसिंहासन पर आसीन थे।

राजसभा में मंत्री, सेनापति, सभासद और बड़े-बड़े नागरिक मौजूद थे। सब में आपस में तरह-तरह की चर्चाएं चल रही थीं।

विक्रमादित्य ने सब की ओर देखते हुए प्रश्न किया, "क्या कोई किसी ऐसे मनुष्य का नाम और पता जानता है, जो सबसे बड़ा दानी हो।"

एक ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "हां महाराज, मैं एक ऐसे मनुष्य को जानता हूं, जो बहुत बड़ा दानी है। वह एक राजा है, समुद्र के किनारे रहता है।"

विक्रमादित्य ने दूसरा प्रश्न किया, "राजा का क्या नाम है? वह समुद्र के किनारे कहां रहता है?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, ''महाराज, उस राजा का नाम स्वर्णसिंह है। वह समुद्र के किनारे, स्वर्ण-द्वीप में रहता है। वह रोज स्नान के बाद, एक लाख स्वर्ण-मोहरों का दान करता है।''

विक्रमादित्य ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। उनके मन में उस दानी राजा के दर्शन की लालसा पैदा हो उठी।

विक्रमादित्य ने दूसरे दिन ताल-वैताल को याद किया।

ताल-वैताल सेवा में उपस्थित हुए। विक्रमादित्य ने उनसे कहा, ''तुम हमें समुद्र के किनारे, स्वर्ण-द्वीप पर स्वर्णसिंह राजा के नगर में ले चलो।''

ताल-वैताल ने शीघ्र ही विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया, उन्हें स्वणसिंह के नगर के बाहर पहुंचा दिया।

विक्रमादित्य ने ताल-वैताल से कहा, ''तुम दोनों जाओ। मैं नगर में राजा के पास जा रहा हूं। आवश्यकता पड़ने पर जब याद करूंगा, तो फिर आ जाना।''

ताल-वैताल लौट गए।

विक्रमादित्य वेश बदल कर स्वर्णसिंह के महल के द्वार पर पहुंचे। द्वार पर सन्तरी खड़ा था। विक्रमादित्य ने संतरी से कहा, ''जाओ, राजा को सूचना दे दो। मैं उनके दर्शन करना चाहता हूं।''

संतरी ने जब सूचना दी, तो राजा अपनेआप ही बाहर निकल आया। उसने विक्रमादित्य की ओर देखते हुए प्रश्न किया, ''तुम कौन हो? मेरे पास किस लिए आये हो?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''महाराज, मैं विक्रमादित्य के देश का रहने वाला एक क्षत्रिय हूं। मेरा नाम विक्रम है। मैं आपके गुणों से मोहित होकर, आपके पास आया हूं। मैं आपके पास रह कर आपकी सेवा करना चाहता हूं।''

स्वर्णसिंह ने प्रश्न किया, ''तुम वेतन क्या लोगे, काम कौन-सा करोगे?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''महाराज, मैं रोज, चार हजार रुपये लूंगा। जो काम कोई नहीं कर सकेगा, मैं उसे पूरा करूंगा।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा ने विक्रमादित्य को अपनी सेवा में रख लिया।

विक्रमादित्य को प्रतिदिन संध्या के बाद चार हजार रुपए मिल जाते थे। वे कुछ अपने खाने-पीने पर खर्च करते थे, शेष सब दान-पुण्य में दे डालते थे।

पर काम कुछ भी नहीं करना पड़ता था, क्योंकि कोई ऐसा काम सामने आता ही नहीं था, जिसे कोई न कर पाता हो।

उधर स्वर्णसिंह प्रतिदिन स्नान करने के बाद एक लाख स्वर्ण-मोहरें दान में दिया करता था। विक्रमादित्य बड़े ध्यान से उसके दान की क्रिया को देखा करते थे।

इसी प्रकार कई मास बीत गए।

एक दिन विक्रमादित्य ने सोचा, जो राजा प्रतिदिन एक लाख स्वर्ण-मोहरों का दान करता है, वह काम कौन-सा करता है? आखिर, वे स्वर्ण-मोहरें आती हैं तो कहां से आती हैं? छिपकर देखना चाहिए, राजा इन स्वर्ण-मोहरों के लिए कौन-सा काम करता है?

विक्रमादित्य बड़ी होशियारी से छिपकर स्वर्णसिंह की गतिविधि पर निगाह रखने लगे।

रात का समय था। विक्रमादित्य स्वर्णसिंह की गतिविधि का पता लगाने के लिए राजमहल के पास छिपे हुए थे।

विक्रमादित्य को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि राजा अकेला ही अपने राजमहल से निकल कर कहीं जा रहा है।

विक्रमादित्य चुपचाप राजा के पीछे-पीछे चलने लगे।

राजा वन में एक देवी के मंदिर में पहुंचा। मंदिर में आग पर बहुत बड़ा कड़ाह चढ़ा हुआ था। ब्रह्मा जी उस कड़ाह में घी डाल कर औटा रहे थे।

राजा ने मंदिर में पहुंच कर तालाब में स्नान किया। फिर वह उस कड़ाह में कूद पड़ा, जिसमें घी औटाया जा रहा था।

राजा का शरीर जल-भुन गया। शीघ्र ही चौंसठ योगिनियां दौड़-दौड़ कर आ पहुंचीं। सब राजा के शरीर के मांस को नोच-नोच कर खाने लगीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कुछ क्षणों बाद, राजा के शरीर में हड्डियों के ढांचे को छोड़कर और कुछ नहीं रह गया।

योगिनियां जब चली गईं, तो देवी हाथ में अमृत का कलश लेकर प्रकट हुई। देवी ने 'राम-राम' कहते हुए अमृत राजा के कंकाल पर छिड़क दिया।

राजा उठ बैठा। उसका शरीर फिर पहले के समान हो गया। उसने बड़े आदर से देवी को प्रणाम किया। देवी ने उसे एक लाख स्वर्ण-मोहरें प्रदान कीं।

राजा मोहरें लेकर चला गया।

विक्रमादित्य ने छिपकर इस अनोखे कृत्य को देखा। वह यह समझ गए कि राजा को किस प्रकार प्रतिदिन एक लाख स्वर्ण-मोहरें मिलती हैं!

राजा के चले जाने पर, विक्रमादित्य भी जाकर उस कड़ाह में कूद पड़े। पहले की ही भांति फिर योगिनियां आईं, और मांस खाकर चली गईं। देवी ने फिर प्रकट होकर अमृत छिड़का और विक्रमादित्य को एक लाख स्वर्ण-मोहरें प्रदान कीं।

पर विक्रमादित्य एक लाख स्वर्ण-मोहरें पाने पर गए नहीं, बल्कि वे बार-बार कड़ाह में कूदने लगे, और बार-बार देवी से एक लाख स्वर्ण-मोहरें पाने लगे।

विक्रमादित्य के बार-बार कड़ाह में कूदने से देवी उन पर अधिक प्रसन्न हुईं। उन्होंने विक्रमादित्य से कहा, "मैं तुम्हारे त्याग और साहस से बहुत प्रसन्न हूं। तुम अपनी इच्छानुसार कुछ भी मुझ से मांग सकते हो।"

विक्रमादित्य ने कहा, "यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो दया करके मुझे वह थैली दे दीजिए, जिसमें से आप प्रतिदिन राजा को एक लाख स्वर्ण-मोहरें निकाल कर देती हैं।"

देवी ने अपनी थैली विक्रमादित्य को दे दी। वे उस थैली को लेकर नगर में लौट आए।

दूसरे दिन जब आधी रात हुई तो राजा अपने नियम के अनुसार

S.P.S. Library
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

फिर वन में गया, पर उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहां न तो मंदिर है, न तालाब है और न मंदिर में कड़ाह चढ़ा है।

राजा का हृदय दुख से मथ उठा। उसने बड़ी चीख-पुकार की, पर उसे सांय-सांय को छोड़कर कुछ भी जवाब नहीं मिला।

राजा अपने महल में जाकर पलंग पर पड़ रहा। उसका बाहर निकलना बंद हो गया। उसने खाना-पीना भी छोड़ दिया। उसका प्रतिदिन दान करना बंद हो गया। राज-काज में भी उसकी बिलकुल रुचि नहीं रही।

मंत्री, सेनापति, दरबारी— सभी घबरा उठे; सभी राजा के पास जाने लगे। उससे उसके जी का हाल-चाल पूछने लगे, पर राजा किसी से भी अपने जी का हाल नहीं बताता था। वह सब को टाल दिया करता था।

बड़े-बड़े वैद्य और हकीम भी राजा के पास पहुंचे, पर उनकी भी समझ में नहीं आया कि राजा को कौन सा रोग है!

आखिर, अवसर पाकर विक्रमादित्य भी राजा के पास गए। उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, आपको कौन-सा दुख है? आपके दुख को देखकर सारी प्रजा आकुल हो रही है। कृपया, अपने मन के दुख को प्रकट कीजिए!"

पर राजा ने विक्रमादित्य को टाल दिया।

पर विक्रमादित्य चुप नहीं हुए। उन्होंने राजा से फिर कहा, "महाराज, जब मैं नौकर रखा गया था तो मैंने कहा था, जो काम कोई नहीं कर सकेगा, उस काम को मैं करूंगा। अब वह अवसर उपस्थित हुआ है। आपके मन में जो दुख है, उसे कोई भी दूर नहीं कर पा रहा है। कृपया मुझे बताइए। आपके दुख को मैं दूर करूंगा।"

राजा ने आशा-भरी दृष्टि से विक्रमादित्य की ओर देखा। विक्रमादित्य ने फिर कहा, "मैं सच कह रहा हूं महाराज! आप अपने दुख को मुझ पर प्रकट कीजिए। मैं अवश्य आपके दुख को दूर करूंगा।"

राजा ने प्रतिदिन एक लाख स्वर्ण-मोहरों के मिलने की कहानी विक्रमादित्य को सुना दी। उसने बड़े ही दुख के साथ विक्रमादित्य को बताया कि अब उस जगह न तो मंदिर है और न देवी की मूर्ति है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विक्रमादित्य ने राजा को ढाढ़स बंधाया। उन्होंने राजा से कहा, ''महाराज, आप बिलकुल चिंता न करें। आप सवेरे उठकर, नहा-धो कर दान के सिंहासन पर बैठें। आपका दान उसी तरह चलेगा, जिस तरह पहले चला करता था।''

यद्यपि राजा के मन में आगा-पीछा चल रहा था, फिर भी वह दूसरे दिन नहा-धो कर, दान के सिंहासन पर जा बैठा।

विक्रमादित्य ने राजा के पास पहुंच कर उसे देवी की थैली प्रदान की। उन्होंने राजा से कहा, ''महाराज, आप प्रतिदिन इस थैली के भीतर से एक लाख स्वर्ण-मोहरें निकाल सकते हैं। यह थैली कभी खाली नहीं होगी।''

राजा ने थैली में हाथ डालकर देखा तो एक लाख स्वर्ण मोहरें मौजूद थीं। उसने बार-बार हाथ डालकर थैली की परीक्षा ली। उसने जितनी बार थैली में हाथ डाला, उसे हर बार एक लाख स्वर्ण-मोहरें मिलीं।

राजा प्रसन्न हो उठा।

विक्रमादित्य ने राजा से कहा, ''महाराज, अब आप अपनी प्रजा का पालन करें। मेरा काम समाप्त हो गया। अब मैं अपने देश जा रहा हूं। मेरी प्रजा रास्ता देख रही होगी।''

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने विक्रमादित्य की ओर देखते हुए कहा, ''प्रजा? क्या तुम किसी देश के राजा हो?''

विक्रमादित्य ने कहा, ''हां महाराज, मैं उज्जैन का राजा विक्रमादित्य हूं। मैं आपके दान-यश को सुनकर आपके दर्शन करने आया था।''

स्वर्णसिंह विक्रमादित्य के पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा, ''राजाधिराज, मैंने आपके संबंध में जो-कुछ सुना था, वह सब मेरे सामने साकार हुआ। आप सचमुच महान हैं, महान से भी महान हैं।''

सचमुच विक्रमादित्य महान थे, महान से भी अति महान थे। कई हजार साल बीत चुके हैं, पर उनके यश की पताका आज भी फहरा रही है, धरती पर ही नहीं, आकाश पर भी फहरा रही है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

7

बटुए का दान

विक्रमादित्य अपनी राजसभा में बैठे हुए थे।

तरह-तरह की चर्चाएं चल रही थीं। उन्हीं चर्चाओं के सिलसिले में शिकार की भी चर्चा चल पड़ी। विक्रमादित्य ने कहा, ''कल हम शिकार खेलने चलेंगे। हमारे साथ सभी दरबारियों को भी शिकार में चलना पड़ेगा। जो शिकार में सबसे बढ़कर बहादुरी दिखायेगा, उसे पुरस्कार दिया जायेगा।''

रात में ही शिकार की तैयारियां पूरी कर ली गईं।

दूसरे दिन, सवेरा होने पर विक्रमादित्य घोड़े पर सवार होकर, शिकार के लिए चल पड़े। उनके साथ उनके सभी दरबारी थे। दरबारी भी घोड़े पर सवार थे। सब तरह-तरह के हथियार लिये हुए थे।

वन में पहुंच कर सब अपना-अपना करतब दिखाने लगे। किसी ने मृग के पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया, तो किसी ने शूकर के। किसी ने बाघ का पीछा किया, तो किसी ने चीते का। कोई किसी पक्षी के पीछे दौड़ पड़ा, तो किसी ने खरगोश का पीछा किया। विक्रमादित्य एक स्थान पर बैठकर सब का करतब देखने लगे। सहसा विक्रमादित्य की एक हिरन पर दृष्टि पड़ी। उसके शरीर पर रंगदार चित्तियां पड़ी थीं। ऐसा लग रहा था, मानो उसने कई रंगों की ओढ़नी अपने ऊपर डाल रखी हो।

विक्रमादित्य ने वैसा सुन्दर मृग कभी नहीं देखा था। उन्होंने उस मृग के पीछे अपना घोड़ा दौड़ा दिया।

मृग चौकड़ियां भरते-भरते बहुत दूर जा पहुंचा था। विक्रमादित्य भी उसका पीछा करते-करते बहुत कुछ दूर निकल गए। शाम हो गई। सूर्य डूब गया। मृग हाथ न लगा।

दूर-दूर तक अंधेरा हो रहा था। चारों ओर जंगल। जंगल में विक्रमादित्य और उनके घोड़े को छोड़कर और कोई नहीं था। दोनों थके तो थे ही, प्यास से आकुल थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विक्रमादित्य घोड़े से उतर पड़े। वे घोड़े की लगाम पकड़ कर पानी की खोज में पैदल ही चल पड़े।

विक्रमादित्य एक नदी के किनारे पहुंचे। वे घोड़े को पानी पिला कर स्वयं भी नदी में झुक कर पानी पीने लगे।

इसी समय उनकी दृष्टि एक नाव पर पड़ी, जो नदी में धीरे-धीरे चल रही थी। नाव पर दो मनुष्य बैठे हुए थे। वे एक बकरे को लेकर आपस में विवाद कर रहे थे।

वैताल कहता था, बकरा उसका है। वह आज उसी को खाकर अपनी क्षुधा शान्त करेगा। और योगी कहता था, नहीं बकरा उसका है। वह देवी को बकरे की बलि देकर तंत्र-साधना करेगा।

दोनों आपस में रह-रहकर उलझ रहे थे, पर दोनों में किसी तरह भी समझौता होता हुआ नहीं दिखाई पड़ रहा था।

विक्रमादित्य पानी पीने के बाद खड़े हुए, खड़े होकर दोनों का उलझना देखने लगे।

योगी और वैताल में जब किसी तरह निपटारा नहीं हुआ तो दोनों ने किसी तीसरे से निपटारा कराने का फैसला किया, पर वहां तीसरा था कौन, जो उनके विवाद का निपटारा करता!

सहसा दोनों की दृष्टि विक्रमादित्य पर पड़ी। वे अपने घोड़े के साथ, किनारे पर खड़े होकर उन दोनों की ओर देख रहे थे।

दोनों नाव को किनारे ले गए। उन्होंने विक्रमादित्य से निवेदन किया, "तुम बड़े तेजस्वी जान पड़ते हो! हम दोनों के विवाद का निपटारा कर दो, तो बड़ी कृपा हो।"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "अवश्य, हम तुम दोनों के विवाद का निपटारा कर देंगे; पर यह तो बताओ, तुम दोनों में विवाद किस बात के लिए है?"

वैताल नें कहा, "विवाद इस बकरे के लिए है। यह मेरा भोजन है। मैं इसे खाकर अपनी भूख शान्त करना चाहता हूं, पर यह योगी इस बकरे को मुझ से छीन ना चाहता है।"

योगी ने कहा, "नहीं, यह बकरा मेरा है। मैं इस बकरे की बलि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देकर तंत्र-साधना करूंगा। यह वैताल मेरी तंत्र-साधना में विघ्न डाल रहा है।''

दोनों की बात सुनकर विक्रमादित्य ने कहा, ''यदि हम तुम दोनों के विवाद का निपटारा कर दें, तो तुम दोनों हमें क्या दोगे?''

वैताल ने कहा, ''यदि तुम विवाद का फैसला कर दोगे तो मैं तुम्हें मोहिनी तिलक दूंगा।''

वैताल ने मोहिनी तिलक की डिबिया निकाल कर विक्रमादित्य को दे दी। उसने कहा, ''तुम इस तिलक को अपने मस्तक पर लगा कर जहां भी जाओगे, तुम्हारी विजय होगी।''

योगी ने कहा, ''और मैं तुम्हें एक बटुआ दूंगा।''

योगी ने बटुआ निकाल कर विक्रमादित्य को दे दिया। उसने कहा, ''यह बटुआ बड़ा करामाती है। तुम इसमें से चाहे जितना भी धन बार-बार निकाल सकते हो! यह कभी खाली नहीं होगा।''

विक्रमादित्य ने बटुआ और मोहिनी तिलक की डिबिया अपने पास रख ली। उन्होंने योगी और वैताल से कहा, ''तुम दोनों व्यर्थ ही आपस में झगड़ रहे हो! बकरा एक है, और तुम दो! मेरे घोड़े को भी बकरे के साथ मिला लो। वैताल को भूख लगी है, वह मेरे घोड़े का मांस खाकर अपनी भूख शान्त करे। योगी तंत्र-साधना करना चाहता है, वह बकरे की बलि देकर तंत्र साधना करे।''

योगी और वैताल—दोनों ने विक्रमादित्य के फैसले को स्वीकार कर लिया।

विक्रमादित्य घोड़ा वैताल को देकर पैदल ही चल पड़े।

अंधेरी रात! जंगली रास्ता! रास्ते में कंकड़-पत्थर, कुश-कांटे! रह-रहकर विक्रमादित्य को ठोकर लग जाती थी, रह-रहकर उनके पैरों में कांटे चुभ रहे थे, पर फिर भी वे चलते रहे, रात-भर पैदल चलते रहे।

सवेरा हो रहा था। सूर्य की किरणें निकल रही थीं। विक्रमादित्य अपनी राजधानी के निकट पहुंच गए थे।

नगर की ओर से एक वृद्ध भिखारी आ रहा था। वह बड़ा दुखी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दिखाई पड़ रहा था। विक्रमादित्य को देखकर उसने उन्हें बड़े आदर से प्रणाम किया।

विक्रमादित्य ने उससे प्रश्न किया, "तुम कौन हो! सवेरे-सवेरे कहां जा रहे हो?"

वृद्ध ने उत्तर दिया, "महाराज, मैं उज्जैन का एक गरीब नागरिक हूं। आज मेरी कन्या का विवाह है, पर कन्या को देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। अत: मैं भिक्षा मांगने जा रहा हूं। भिक्षा में जो कुछ मिलेगा, उसी से मैं अपनी कन्या का विवाह करूंगा।"

विक्रमादित्य के हृदय में दया उमड़ उठी। उन्होंने योगी का बटुआ निकाल कर वृद्ध को दे दिया। उन्होंने वृद्ध से कहा, "बाबा, तुम इस बटुए में से चाहे जितना धन, जितनी बार चाहो निकाल सकते हो! यह कभी खाली नहीं होगा।"

वृद्ध ने बटुआ हाथ में लेकर उसके भीतर हाथ डाला, तो उसकी मुट्ठी अशर्फियों से भर गई।

वृद्ध प्रसन्न हो उठा। वह विक्रमादित्य को आशीषें देता हुआ अपने घर लौट गया।

वृद्ध की उस प्रसन्नता को देखकर विक्रमादित्य को इतनी प्रसन्नता हुई, मानो उनका स्वर्ग पर अधिकार हो गया हो।

धन्य थे विक्रमादित्य! उनके समान पर-दुख-कातर कदाचित् ही कोई और हुआ हो!

8

विश्वासघात का फल

विक्रमादित्य अपनी राजसभा में राजसिंहासन पर आसीन थे।

मंत्री, सेनापति, विद्वान, नागरिक—सभी अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए थे। राज-काज की चर्चाएं चल रही थीं।

एक विद्वान ब्राह्मण विक्रमादित्य के सामने उपस्थित हुआ। उसने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हाथ जोड़कर निवेदन किया, ''महाराज, मैंने एक श्लोक बनाया है। मैं उसे सुनाने के लिए ही आपके पास आया हूं।''

विक्रमादित्य ने श्लोक सुनाने की आज्ञा दे दी।

ब्राह्मण ने विक्रमादित्य को श्लोक सुना दिया। श्लोक का तात्पर्य था—जो मनुष्य अपने मित्र से द्रोह और विश्वासघात करता है, उसे करोड़ों वर्षों तक नरक का दुख भोगना पड़ता है।

विक्रमादित्य श्लोक सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मण को एक लाख रुपये देने की आज्ञा प्रदान की।

ब्राह्मण जब पुरस्कार की राशि लेकर जाने लगा तो विक्रमादित्य ने कहा, ''ब्राह्मण श्रेष्ठ! तुम्हारा श्लोक है तो बहुत अच्छा, पर मैं इस बात को कैसे मानूं कि मित्र से द्रोह और विश्वासघात करने वाले को करोड़ों वर्षों तक नरक का दुख भोगना पड़ता है।''

ब्राह्मण रुक गया। उसने कहा, ''महाराज, मैं आपको एक कहानी सुना रहा हूं, जिसे सुनकर आपको यह मानना ही पड़ेगा कि मित्र के साथ द्रोह और विश्वासघात करने वाले को सचमुच करोड़ों वर्षों तक नरक का दुख भोगना पड़ता है।''

ब्राह्मण विक्रमादित्य से आज्ञा लेकर, उन्हें कहानी सुनाने लगा—

एक देश में एक राजा राज्य करता था। राजा बड़ा मूर्ख था। मूर्ख होने के कारण वह बड़ा शक्की भी था। दूसरों की तो कोई बात ही नहीं, वह स्वयं अपनेआप पर भी संदेह करता था।

राजा के कुटुम्ब में वह, उसकी रानी और उसका जवान पुत्र था। रानी बड़ी सुंदर थी। राजा तन-मन से उसकी सुन्दरता पर निछावर था।

राजा जहां भी जाता था, रानी को अपने साथ ले जाता था। वह जब राज-काज के लिए राजसभा में राजसिंहासन पर बैठता, तो उस समय भी रानी उसकी बगल में होती थी।

राजा की इस मोहासक्ति को देखकर राज्य में उसकी बदनामी होने लगी। लोग आम तौर से कहने लगे, 'राजा रानी की सुन्दरता पर इतना मोहित है कि उसे प्रजा की भी सुध नहीं रहती। ऐसे राजा का तो शीघ्र से शीघ्र अन्त हो जाना अच्छा है।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा की बदनामी मंत्री के कानों में भी पड़ी। मंत्री बड़ा दुखी हुआ। वह सोचने लगा, ऐसा कौन-सा उपाय किया जा जाये, जिससे राजा रानी को सदा अपने पास रखना छोड़ दे!

एक दिन मंत्री ने राजा से निवेदन किया, ''महाराज, हमारी महारानी बहुत सुन्दर हैं। आप उन्हें सदा अपने पास रखते हैं। कहीं ऐसा न हो कि, कोई दुष्ट उनकी सुन्दरता को नजर लगा दे। इससे अच्छा तो यह है कि आप महारानी के बदले सदा उनकी तसवीर अपने पास रखें। आप महारानी को सदा देखते भी रहेंगे और उनकी सुन्दरता को नजर लगने का डर भी न रहेगा।''

मंत्री की बात राजा को जंच गई। उसने रानी का एक सुन्दर चित्र बनवाने की आज्ञा दे दी।

मंत्री ने एक बहुत बड़े और कुशल चित्रकार को चित्र बनाने का कार्य सुपुर्द किया।

चित्रकार रानी को एक बार नहीं अनेक बार देख चुका था, क्योंकि रानी राजा के साथ बराबर बाहर आया-जाया करती थी।

चित्रकार अपने कार्य में लग गया। कई महीने तक बराबर काम करते रहने के बाद चित्रकार ने अपना काम पूरा किया। उसने रानी का एक बड़ा ही सुन्दर चित्र तैयार किया। चित्रकार ने अपनी कला से चित्र में जान-सी डाल दी थी।

चित्रकार रानी का चित्र राजा के पास ले गया। राजा उस चित्र को देखकर बाग-बाग हो उठा।

पर राजा शक्की तो था ही! उसके मन में सन्देह भी पैदा हो उठा। वह चित्र को देखकर मन-ही-मन सोचने लगा, किस तरह चित्रकार ने रानी का इतना सुन्दर चित्र तैयार किया? अवश्य रानी और चित्रकार दोनों आपस में मिलते हैं।

राजा चित्रकार से जल-भुन उठा। उसने चित्रकार को पारिश्रमिक और पुरस्कार देने के स्थान पर आदेश दिया—''चित्रकार की आंखें निकलवा ली जाएं।''

बेचारा चित्रकार करता तो क्या करता? राजा की आज्ञा से पकड़

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लिया गया।

पर मंत्री ऊंचे विचारों का था। वह राजा की मूर्खताओं और उसके शक्की स्वभाव से परिचित था। उसने बड़ी बुद्धिमानी और अपने प्रभाव से चित्रकार को बचा लिया।

मंत्री ने राजा के पास हरिण की आंखें भेजकर, उसे संतोष दिला दिया कि चित्रकार की आंखें निकाल ली गईं।

कई महीने बीत गए। एक दिन राजकुमार वन में शिकार खेलने गया। जैसा बाप, वैसा ही बेटा। बाप की तरह उसकी भी रग-रग में कायरता और मूर्खता समायी हुई थी।

राजकुमार जब वन में पहुंचा, तो उसे एक शेर दिखाई पड़ा। शेर को देखते ही उसके प्राण कूच कर गए। वह डर कर एक पेड़ पर चढ़ गया।

संयोग की बात, पेड़ पर पहले से ही एक रीछ शेर से डरकर बैठा हुआ था। शेर उस पेड़ के नीचे आकर बैठ गया और दोनों के उतरने की प्रतीक्षा करने लगा।

दिन बीत गया, शाम को गई। रात भी हो आई पर शेर पेड़ के नीचे से नहीं गया। रीछ और राजकुमार– दोनों पेड़ पर ही टंगे रहे।

रात में रीछ ने राजकुमार से कहा, ''शेर हम दोनों का शत्रु है। हम दोनों को रात पेड़ पर ही काटनी पड़ेगी। बिना सोए कैसे काम चलेगा? उधर शेर पर भी निगाह रखनी होगी। इसलिए आधी रात तक तुम सोओ और मैं पहरा दूं, और उसके बाद आधी रात तक मैं सोऊं, तुम पहरा दो।''

राजकुमार ने रीछ की बात मान ली।

पहली आधी रात तक के लिए राजकुमार सोने लगा। रीछ पेड़ की डाल पर बैठकर पहरा देने लगा।

जब राजकुमार गाढ़ी नींद में खर्राटे भरने लगा, तो पेड़ के नीचे से शेर बोला, ''रीछ, राजकुमार सो गया है। आओ हम दोनों इस अवसर से लाभ उठायें, क्योंकि राजकुमार मनुष्य है, और हम तुम जंगल के जीव हैं। राजकुमार हम दोनों का शत्रु है। इसलिए तुम राजकुमार को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नीचे धकेल दो और स्वयं भी नीचें आ जाओ। हम दोनों राजकुमार को खाकर अपनी भूख मिटा लेंगे।''

पर रीछ ने शेर की बात नहीं मानी। उसने कहा, ''राजकुमार, मुझ पर विश्वास करके सो रहा है। वह चाहे जो हो, पर इस समय मेरा मित्र है। मैं मित्र के साथ विश्वासघात नहीं कर सकता।''

शेर करता तो क्या करता? चुप हो गया।

पहली आधी रात खत्म होने पर रीछ सोने लगा, और राजकुमार जागकर पहरा देने लगा।

जब रीछ गाढ़ी नींद में सो गया, तो शेर ने पेड़ के नीचे से राजकुमार से कहा, ''राजकुमार, मैं और रीछ दोनों तुम्हारे शत्रु हैं। यदि तुम मेरी बात मान लो, तो हम दोनों से बच सकते हो।''

राजकुमार ने पूछा, ''कहो, क्या है तुम्हारी बात?''

शेर ने कहा, ''तुम रीछ को नीचे धकेल दो। मैं उसे खाकर चला जाऊंगा। जब मैं चला जाऊं, तो तुम पेड़ के नीचे उतरकर सही-सलामत अपने घर चले जाना।''

राजकुमार को शेर की बात जंच गई। उसने रीछ को नीचे धकेल दिया।

पर राजकुमार ने ज्यों ही रीछ को नीचे धकेला, उसकी आंखें खुल गई। वह पेड़ की डाल पकड़ कर ऊपर ही रह गया।

राजकुमार के विश्वासघात से रीछ क्रुद्ध तो हुआ, पर उसने अपने क्रोध को उभरने नहीं दिया। उसने राजकुमार को फटकारते हुए कहा, ''दुष्ट, मैंने जानवर होकर तेरी रक्षा की, और तूने मनुष्य होकर मेरे साथ विश्वासघात किया! यदि मैं चाहूं, तो तुझे तेरे पाप की भरपूर सजा दे सकता हूं।''

राजकुमार डर से कांपने लगा। उसने समझा, रीछ उसे अवश्य मार डालेगा, पर रीछ शांत था। वह बड़ी घृणा-भरी दृष्टि से राजकुमार को देख रहा था।

सवेरा हो रहा था। सूर्य की रोशनी को देखकर शेर पेड़ के नीचे से चला गया। रीछ ने राजकुमार की ओर घृणा के साथ देखते हुए कहा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

''पर दुष्ट, तेरे जैसे पापी मनुष्य को मैं खाना भी पसंद नहीं करता।''

रीछ राजकुमार के कानों में पेशाब करके चला गया।

राजकुमार पेड़ से नीचे उतरा, पर उसका बुरा हाल था। वह बिलकुल पागल-सा हो गया। न तो कुछ बोलता था, और न उसे कुछ सुनाई ही पड़ता था।

राजकुमार किसी तरह अपने महल में गया। उसकी बुरी दशा देखकर उसका बाप चिन्तित हो उठा। एक ही लड़का था। बड़े-बड़े हकीमों और वैद्यों को बुलाकर इलाज कराने लगा, पर कुछ भी फायदा नहीं हुआ। राजकुमार की हालत ज्यों-की-त्यों बनी रही।

राजा निराश हो उठा। आखिर उसने मंत्री से प्रार्थना की, ''मंत्रीजी, आप कुछ उपाय करें, नहीं तो मुझे लड़के से हाथ धोना पड़ेगा।''

मंत्री ने किसी तरह यह पता लगा लिया कि वन में राजकुमार के साथ कैसी घटना घटी थी! किस तरह वह शेर से डरकर पेड़ पर चढ़ा था, किस तरह पेड़ पर उसमें और रीछ में मित्रता हुई थी, किस तरह उसने रीछ के साथ विश्वासघात किया था और किस तरह रीछ ने उसके कानों में पेशाब कर दी थी।

राजा की प्रार्थना पर मंत्री ने मन-ही-मन सोच-विचार किया। उसने सोचा, 'यह अच्छा अवसर है, जब राजा को उसकी मूर्खताओं से अलग किया जा सकता है!'

मंत्री ने राजा से कहा, ''महाराज, अब वैद्यों-हकीमों से तो कुछ काम नहीं चलेगा। अब तो एक ही उपाय है, तंत्र-मंत्र का सहारा लिया जाए। मेरी पुत्र-वधू, तंत्र-मंत्र की विद्या में बड़ी चतुर है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपनी पुत्र-वधू को लाकर राजकुमार को दिखाऊं, पर मेरी पुत्र-वधू राजकुमार के सामने नहीं जायेगी। वह पर्दे की ओट से राजकुमार को देखेगी, उनके रोग को दूर करने का उपाय करेगी।''

राजा ने मंत्री की बात मान ली।

मंत्री ने उस चित्रकार को बुलवाया, राजा ने उसकी आंखें निकालने की आज्ञा दी थी।

मंत्री चित्रकार को स्त्री-वेश में सजाकर अपने पुत्र की वधू के रूप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में महल में ले गया। उसने चित्रकार को वह पूरी घटना बता दी थी, जो वन में राजकुमार के साथ घटी थी।

महल में चित्रकार-रूपी मंत्री की पुत्र-वधू को, एक पर्दे के भीतर रखा गया। पर्दे के बाहर राजकुमार, राजा, मंत्री और रानी आदि लोग थे।

पर्दे के भीतर से मंत्री की पुत्र-वधू ने कहा, ''राजकुमार, तुम्हें जो रोग है, वह रोग नहीं, मित्र के साथ धोखा करने का पाप है। तुमने अपने मित्र रीछ के साथ विश्वासघात करके बहुत बड़ा पाप किया है। जब तक तुम सबके सामने अपने पाप को स्वीकार नहीं करोगे, कभी अच्छे न होगे।''

राजकुमार बोल उठा, ''हां, यह सच है, बिलकुल सच है। मैंने अपने मित्र रीछ को धोखा दिया था। मैं पापी हूं, बहुत बड़ा पापी हूं।''

राजकुमार के बोलने और सचेत होने से राजा के हृदय में आनन्द का सागर लहरा उठा। साथ ही उसके मन में यह सवाल भी पैदा हो उठा, मंत्रीजी की की पुत्र-वधू ने यह सब कैसे जाना, राजा बोल उठा, ''पर बेटी, यह तुमने कैसे जाना कि राजकुमार ने वन में अपने मित्र रीछ को धोखा दिया था?''

चित्रकार-रूपी पुत्र-वधू ने पर्दे के भीतर से उत्तर दिया, ''महाराज, मुझ पर सरस्वती की कृपा है। मैं सरस्वती की कृपा से सब-कुछ जान लेती हूं—सब-कुछ देख लेती हूं। किसी ऐसे आदमी का चित्र भी ठीक-ठीक बना देती हूं, जिसे मैंने कभी नहीं देखा हो, या दूर से देखा हो।''

राजा मंत्री की पुत्र-वधू पर प्रसन्न हो उठा। उसने उसे देखने के लिए पर्दा उठा दिया। उसने पर्दा उठाकर देखा, तो वह मंत्री की पुत्र-वधू के वेश में चित्रकार था।

राजा चित्रकार और मंत्री की चतुराई पर प्रसन्न हो उठा। उसने दोनों को बहुत बड़ा पुरस्कार दिया, साथ ही अपनी भूल पर पश्चात्ताप भी किया।

ब्राह्मण ने कहानी को समाप्त करके कहा, ''महाराज, जिस प्रकार चित्रकार को सजा देकर मूर्ख राजा को पछताना पड़ा, और जिस प्रकार रीछ के साथ विश्वासघात करके राजकुमार को दुख भोगना पड़ा, उसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रकार जो लोग मित्र, स्नेही और हितैषी के साथ विश्वासघात करते हैं, उन्हें भी पछताना पड़ता है, दुख भोगना पड़ता है।''

विक्रमादित्य ब्राह्मण पर और भी अधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मण को अधिक-से-अधिक धन देकर उसे बड़े आदर के साथ विदा किया।

9

बहुमूल्य उड़नखटोला

उज्जैन में एक बहुत बड़ा सेठ रहता था।

सेठ बड़ा धनी था। सारे नगर में उसका नाम था। लोग उसे नगर-सेठ कहते थे। स्वयं विक्रमादित्य भी उसका आदर करते थे।

सेठ का एक लड़का था। लड़का बड़ा रूपवान और गुणवान था। वह बुद्धिमान तो था ही, माता-पिता का बड़ा भक्त भी था।

लड़का जब विवाह योग्य हुआ, तो सेठ ने उसका विवाह करने का निश्चय किया। उसने सोचा, 'उसके लड़के का विवाह किसी ऐसी लड़की के साथ होना चाहिए, जो उसी के समान सुन्दर और गुणवती हो।'

पर ऐसी सुन्दर और गुणवती लड़की मिले तो किस प्रकार मिले?

सेठ ने अपने पुरोहित को बुलाकर उससे कहा, ''पुरोहितजी, मैं अपने लड़के का विवाह किसी ऐसी लड़की के साथ करना चाहता हूं, जो मेरे लड़के के समान ही सुन्दर हो, गुणवती हो। आप किसी ऐसी लड़की का पता लगाएं। देश में, विदेश में, जहां भी ऐसी लड़की मिले, आप ढूंढ़ें। जितना भी धन खर्च हो, खर्च करें; पर ऐसी लड़की का पता अवश्य लगायें।''

पुरोहित तो पुरोहित था ही। वह सेठ से रुपया-पैसा लेकर सुन्दर और गुणवती लड़की की खोज में निकल पड़ा।

पुरोहित गांव-गांव, नगर-नगर घूमने लगा पर उसे आस-पास कहीं कोई ऐसी लड़की नहीं मिली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जब आस-पास कोई लड़की नहीं मिली, तब पुरोहित जहाज पर सवार होकर समुद्र के उस पार गया। आखिर समुद्र के उस पार, एक नगर में उसे सुन्दर और गुणवती लड़की का पता चला।

उस लड़की का भी पिता एक बहुत बड़ा सेठ था। वह भी अपनी सुन्दर और गुणवती लड़की का विवाह किसी ऐसे लड़के के साथ करना चाहता था, जो उसी के समान सुन्दर और गुणवान हो। वह भी अपनी लड़की के विवाह के लिए वर खोज रहा था।

पुरोहित सेठ के घर का पता लगा कर, उसके पास पहुंचा। उसने सेठ से मिलकर उसे अपना मंतव्य बताया।

सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने पुरोहित को बड़े आदर से अपने घर टिकाया, उसकी बड़ी आवभगत की।

सेठ ने अपनी लड़की पुरोहित को दिखा दी। लड़की सचमुच देवकन्या थी। पुरोहित ने उसे पसन्द कर लिया।

पुरोहित ने सेठ से कहा, ''मैंने तो आपकी कन्या पसन्द कर ली। अब आप अपने पुरोहित को मेरे साथ उज्जैन भेज दीजिए। वह चलकर लड़के को देख ले। यदि उसे लड़का पसन्द आ जाए, तो वह विवाह पक्का कर दें।''

सेठ तैयार हो गया। उसने अपने पुरोहित को उज्जैन भेज दिया।

पुरोहित ने उज्जैन जाकर लड़के को देखा। लड़का क्या था, चांद का टुकड़ा था। पुरोहित ने विवाह पक्का कर दिया।

पर विवाह के लिए जो मुहूर्त निकला, वह बहुत निकट था अर्थात् केवल चार-पांच दिन बाद ही का।

पुरोहित तो विवाह पक्का करने चला गया, पर नगर-सेठ चिंता में पड़ गया। वह सोचने लगा, वह चार दिन में किस तरह विवाह का प्रबन्ध कर सकता है। मान लो, विवाह का प्रबन्ध हो भी जाए, तो इतनी दूर बारात लेकर किस प्रकार ठीक समय पर पहुंचा जा सकता है?

पर विवाह पक्का कर लिया गया था। नगर-सेठ के सामने अब प्रश्न लड़के के विवाह का नहीं, उसकी प्रतिष्ठा का था। उसने सोचा, यदि वह ठीक समय पर बारात सजा कर लड़की के दरवाजे पर नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पहुंचेगा, तो लोग उसकी हँसी उड़ायेंगे। केवल उसी की हँसी नहीं उड़ायेंगे, उसके समाज और उसके देश की भी हँसी उड़ायेंगे।

नगर-सेठ विक्रमादित्य की सेवा में उपस्थित हुआ, क्योंकि वह जानता था, विक्रमादित्य को छोड़कर कोई दूसरा ऐसा नहीं है, जो उसकी समस्या को हल कर सके।

नगर-सेठ ने बड़े दुख-भरे शब्दों में विक्रमादित्य को अपने लड़के के विवाह की कहानी सुनायी।

विक्रमादित्य ने बड़ी ही सहानुभूति के साथ कहा, ''सेठजी, आप बिलकुल चिन्ता न करें। आप मेरी प्रजा हैं। आपकी इज्जत मेरी इज्जत है। मेरे पास एक विमान है, जिसे उड़नखटोला कहते हैं। आप उस विमान पर बैठकर, ठीक समय पर विवाह के लिए लड़की के पिता के दरवाजे पर पहुंच सकते हैं।''

विक्रमादित्य ने अपना विमान नगर-सेठ को दे दिया।

नगर-सेठ की चिंता दूर हो गयी। वह विवाह की तैयारी करके, निश्चित समय पर बारात लेकर, दूसरे सेठ के नगर में जा पहुंचा।

दूसरे सेठ को जब बारात के आने की खबर मिली, तो वह बहुत घबराया। उसने विवाह के लिए कुछ भी प्रबंध नहीं किया था, क्योंकि उसे विश्वास नहीं था कि उज्जैन का सेठ इतने अल्प समय में बारात के साथ यहां पहुंच सकेगा।

पर वह भी बहुत बड़ा सेठ तो था ही! जब उसे बारात के आने की खबर मिली, तो धन के जोर से उसने शीघ्र ही सारा प्रबन्ध पूरा कर लिया।

उज्जैन की बारात सेठ के दरवाजे पर जा पहुंची। विवाह बड़ी धूम-धाम से हुआ। सेठ ने दहेज में बहुत-सा धन देकर लड़की को विदा किया। नगर-सेठ फिर विमान के द्वारा उज्जैन लौट गया।

नगर-सेठ विक्रमादित्य की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने विक्रमादित्य से निवेदन किया, ''महाराज, आपकी दया से मेरी इज्जत बच गई। मैं बारात-सहित आपके विमान पर सवार होकर लड़की के पिता के नगर में गया और विवाह करके फिर अपने नगर में आ गया। आप अब अपना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विमान मंगवा लें। और महाराज, मुझे लड़के के विवाह में दहेज के रूप में बहुत-सा धन मिला है। आपकी बड़ी दया होगी, यदि आप उस धन को भेंट-रूप में स्वीकार करें।''

विक्रमादित्य मुस्करा उठे। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, ''नगर-सेठ, तुम जो कुछ कह रहे हो, अपने स्वभाव के अनुसार कह रहे हो, पर मैं अपने स्वभाव को कैसे छोड़ सकता हूं? मैं जो चीज एक बार दे देता हूं, उसे फिर वापस नहीं लेता! तुम तो यह जानते ही हो कि मैं उसी धन को ग्रहण करता हूं जो मेरा होता है। मैं धन तो लूंगा ही नहीं, और अब विमान भी तुम्हारा ही है।''

नगर-सेठ का मस्तक विक्रमादित्य के सामने झुक गया-- सदा-सदा के लिए झुक गया।

10

शेषनाग की मणियां

दोपहर के बाद का समय था।

विक्रमादित्य का दरबार लगा था। विक्रमादित्य राजसिंहासन पर आसीन थे। आमोद-प्रमोद चल रहे थे। नाच-गाना हो रहा था। हँसी और कहकहों से रह-रहकर वातावरण गूंज रहा था।

जब नाच-गाना खत्म हुआ, तो स्वर्ग और पाताल के राजाओं के दरबारों की चर्चा चल पड़ी। कोई स्वर्ग के राजा के दरबार की प्रशंसा करता था, कोई पाताल के राजा के दरबार की और कोई विक्रमादित्य के दरबार की। विक्रमादित्य चुप थे। वह विचारों में डूबे हुए थे, दरबारियों की बात बड़े ध्यान से सुन रहे थे।

कुछ देर के बाद विक्रमादित्य ने सोचते-सोचते कहा, ''यह तो बहुत-से लोगों को मालूम है कि स्वर्ग के राजा का नाम इन्द्र है, पर क्या यह भी किसी को मालूम है कि पाताल के राजा का क्या नाम है?''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक विद्वान ब्राह्मण ने उत्तर दिया, ''महाराज, पाताल के राजा का नाम शेषनाग है। वह बड़ा प्रतापी और तेजस्वी है। उसी के फणों पर यह पृथ्वी ठहरी हुई है।''

विक्रमादित्य ने फिर कोई दूसरा प्रश्न नहीं किया। उनके मन में पाताल के राजा शेषनाग के दर्शन की अभिलाषा पैदा हो उठी।

दूसरे दिन विक्रमादित्य ने ताल और वैताल को स्मरण किया। दोनों उनके सामने उपस्थित हुए।

विक्रमादित्य ने ताल-वैताल से कहा, ''हमें पाताल-लोक में ले चलो। हम पाताल-लोक के राजा शेषनाग के दर्शन करना चाहते हैं।''

ताल-वैताल ने विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया। उन्होंने उन्हें पाताल-लोक में पहुंचा दिया।

पाताल-लोक में शेषनाग की राजधानी। राजधानी में शेषनाग का सोने का महल। महल में जगह-जगह मणियां जड़ी हुई थीं। ऐसा लग रहा था, मानो हजारों सूर्य एक साथ चमक रहे हों। महल के दरवाजे पर कमल की बनी हुई वन्दनवारें झूल रही थीं। कमलों से निकल-निकल कर सुगंध उड़ रही थी। चारों ओर से नाच-गाने की मधुर-मधुर ध्वनि आ रही थी।

विक्रमादित्य ने महल के द्वार पर पहुंच कर द्वारपाल से कहा, ''मैं उज्जैन से आया हूं। मेरा नाम विक्रमादित्य है। मैं शेषनागजी के दर्शन करना चाहता हूं।''

द्वारपाल ने महल के भीतर जाकर शेषनाग को सूचना दी।

शेषनाग विक्रमादित्य का नाम सुनकर स्वयं बाहर निकल आया। वह बड़े सम्मान के साथ उन्हें अपने महल के भीतर ले गया। उनका बड़ा आदर-सत्कार किया, उनके रहने और खाने-पीने की अच्छी व्यवस्था की।

विक्रमादित्य कई दिनों तक शेषनाग के मेहमान रहे।

कई दिनों के बाद विक्रमादित्य ने उज्जैन लौटने का विचार किया। उन्होंने शेषनाग से कहा, ''महाराज, मैं आपके दर्शन से धन्य हो गया। आपने मेरा जो आदर-सत्कार किया है, वह आप ही के योग्य है। अब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आप मुझे आज्ञा दें। मैं अपने घर जाऊंगा।''

शेषनाग ने विक्रमादित्य को बड़े आदर से विदा किया। उसने उन्हें चार मणियां देते हुए कहा, ''ये मणियां चार गुणों वाली, और चार रंगों की हैं—लाल, पीली, नारंगी और काली। लाल मणि—आप जितना भी चाहेंगे, आपको शीघ्र सोने के गहने दे सकती है। पीली मणि—आप जितनी भी सवारी चाहेंगे आपको दे सकती है। नारंगी मणि—आप जितना भी धन चाहेंगे, दे सकती है और चौथी श्याम मणि—आप जितना भी चाहेंगे, आपके मन को भजन-प्रार्थना में लगा सकती है।''

विक्रमादित्य चारों मणियों को लेकर, शेषनाग से विदा होकर चल पड़े।

नगर से बाहर पहुंचने पर, विक्रमादित्य ने ताल-वैताल को स्मरण किया। दोनों शीघ्र ही उपस्थित हुए। विक्रमादित्य की आज्ञा से, दोनों ने उन्हें फिर उज्जैन पहुंचा दिया।

विक्रमादित्य ने नगर से बाहर ताल-वैताल को छोड़ दिया। वे पैदल ही नगर की ओर बढ़ने लगे।

विक्रमादित्य अभी कुछ ही दूर गए थे कि रास्ते में उनके सामने एक वृद्ध मनुष्य पड़ा। उस वृद्ध मनुष्य के शरीर की हड्डियां दिखाई पड़ रही थीं। उसके हाथ-पैर कांप रहे थे, पर फिर भी वह झाड़ू से रास्ता साफ कर रहा था।

विक्रमादित्य खड़े हो गए। उन्होंने बड़े प्रेम से उसे अपने पास बुलाकर कहा, ''भाई, तू कौन है? तेरा शरीर बहुत ही दुर्बल है। फिर तू झाड़ू देने का काम क्यों कर रहा है?''

वृद्ध ने विक्रमादित्य की ओर देखा। वह उन्हें पहचान गया। वह बड़ी श्रद्धा से उनके सामने झुककर बोला, ''धर्मावतार, मैं भंगी हूं। झाड़ू देने की मेरी नौकरी है। यदि मैं झाड़ू न दूंगा, तो मुझे तनख्वाह न मिलेगी। यदि तनख्वाह न मिलेगी, तो फिर मेरा जीवन-निर्वाह किस तरह होगा?''

विक्रमादित्य के हृदय में दया उमड़ उठी। उनकी आंखें स्नेह और करुणा के जल से भर गईं। उन्होंने भंगी से कहा, ''हमारे पास चार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मणियां हैं। चारों मणियों में अलग-अलग गुण हैं। एक मणि तुम्हें मन चाहे गहने दे सकती है, दूसरी मणि तुम्हें मन चाहे हाथी-घोड़े दे सकती है। तीसरी मणि मन चाहा धन दे सकती है और चौथी मणि तुम्हें भगवान की भक्ति दे सकती है। इन चारों मणियों में से तुम जो मणि चाहो, मैं तुम्हें दे सकता हूं।''

भंगी मन-ही-मन सोचने लगा, वह कौन-सी मणि ले? वह कुछ देर तक सोच-विचार करता रहा, पर किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सका।

आखिर भंगी ने विक्रमादित्य से कहा ''महाराज, आप थोड़ी देर रुकें। मैं घर जा रहा हूं। अपनी स्त्री, अपनी पुत्र-वधू और अपने लड़के से पूछ आऊं, मुझे कौन-सी मणि लेनी चाहिए?''

विक्रमादित्य ने भंगी की बात मान ली। वे वहीं रुककर, भंगी के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

भंगी ने अपने घर जाकर अपने कुटुम्बियों को मणियों के गुण बताये।

भंगी की पत्नी ने कहा, ''तुम्हें वह मणि लेनी चाहिए, जो मन-चाहे गहने दे सकती है।'' लड़के ने कहा, ''नहीं तुम्हें वह मणि लेनी चाहिए जो हाथी-घोड़े दे सकती है।'' और लड़के की पत्नी ने कहा, ''नहीं वह मणि लेनी चाहिए, जो धन दे सकती है।''

भंगी सोचने लगा। उसे तीनों में से किसी की सलाह ठीक नहीं जंची।

भंगी ने कहा, ''मुझे तुम तीनों में से किसी की बात ठीक नहीं लग रही है। मैं तो वह मणि लूंगा, जो भगवान की भक्ति देती है। भक्ति से बढ़कर कीमती चीज कोई दूसरी नहीं है। जहां भगवान की भक्ति रहती है वहां भगवान रहते हैं, और जहां भगवान रहते हैं वहां सब-कुछ रहता है।''

भंगी लौटकर उस जगह गया जहां विक्रमादित्य उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

भंगी ने विक्रमादित्य से कहा, ''महाराज, यदि आप देना चाहते हैं, तो मुझे वह मणि दीजिए, जो भगवान की भक्ति देती है।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विक्रमादित्य आश्चर्य-चकित हो उठे। वह सोचने लगे, 'यह भंगी कितना अद्भुत है। इसे जरूरत तो धन की है; पर यह मांग रहा है वह मणि, जो भगवान की भक्ति देती है'

विक्रमादित्य ने भंगी से कहा, ''भक्ति देने वाली मणि क्यों मांग रहे हो?''

भंगी ने उत्तर दिया, ''महाराज, धन नाशवान है। नाश होने वाली चीज को लेकर हम क्या करेंगे? भक्ति में प्रेम होता है, श्रद्धा होती है, विश्वास होता है। इससे आत्मा उज्ज्वल होती है। उज्ज्वल आत्मा में परमात्मा रहते हैं।''

विक्रमादित्य प्रसन्न हो उठे। उन्होंने चारों मणियां भंगी को दे दीं। उन्होंने कहा, ''तुम्हारे विचार इतने ऊंचे हैं कि सैकड़ों मणियां भी उसके सामने तुच्छ हैं।''

11

ज्योतिषी ब्राह्मण

एक ब्राह्मण था।

ब्राह्मण बहुत बड़ा ज्योतिषी था। वह सामुद्रिक शास्त्र का पंडित था। वह किसी भी मनुष्य के हाथों और पैरों की रेखाओं को देखकर उसके जीवन का पूरा हाल बता देता था।

सवेरे के बाद का समय था। ब्राह्मण पैदल ही वन के रास्ते से कहीं जा रहा था। हठात, पगडंडी पर पड़े हुए किसी आदमी के पैरों की छाप पर उसकी दृष्टि पड़ी।

पैरों की छाप में लंबी ऊर्ध्व रेखा थी। उसमें कमल के फूल भी बने हुए थे।

ज्योतिषी ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूलों को देखकर सोचने लगा, 'अवश्य इस रास्ते से कोई बड़ा राजा नंगे पैर गया है, क्योंकि ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल किसी राजा को छोड़ कर अन्य किसी के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पैर में नहीं होते। चल कर देखना चाहिए, वह राजा कौन है? वह नंगे पैर कहां गया है?'

ज्योतिषी आगे बढ़कर इधर-उधर राजा का पता लगाने लगा।

ज्योतिषी को राजा तो नहीं मिला, पर एक ऐसा आदमी अवश्य मिला, जो एक पेड़ पर चढ़कर लकड़ियां काट रहा था।

ज्योतिषी ने उस आदमी से पूछा, "क्यों भाई, तुम इस पेड़ पर लकड़ी कब से काट रहे हो? क्या तुमने इधर से किसी राजा को पैदल जाते हुए देखा?"

लकड़ी काटने वाले ने उत्तर दिया, "मैं सूर्य निकलने के समय से ही, इस पेड़ पर लकड़ी काट रहा हूं। इधर से कोई राजा तो क्या, कोई घास काटने वाला भी नहीं गया। फिर राजा वन में पैदल क्यों चलने लगा?"

ज्योतिषी सोचने लगा, 'इधर से जब कोई राजा नहीं गया, तो फिर वह किसके पैरों की छाप थी? साधारण आदमियों के तलुओं में तो ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल होते नहीं।'

ज्योतिषी ने सोचते-सोचते उस आदमी से कहा, "भाई, क्या तुम अपने दाहिने पैर का तलवा मुझे दिखा सकते हो?"

उस आदमी ने उत्तर दिया, "तुम ब्राह्मण होकर, मुझ लकड़ी काटने वाले के पैर का तलवा देखोगे! नहीं भाई, नहीं, मैं तुम्हें अपने पैर का तलवा न दिखाऊंगा। मुझे पाप लगेगा।"

पर ज्योतिषी हठ करने लगा, प्रार्थना करने लगा। आखिर उस आदमी ने ज्योतिषी को अपने दाहिने पैर का तलवा दिखा दिया।

ज्योतिषी उस आदमी के पैर के तलवे को देखकर आश्चर्यचकित हो उठा, क्योंकि उसके तलवे में ऊर्ध्व रेखा थी, कमल के फूल थे। ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल राजा के पैर के तलवे में होते हैं, पर वह आदमी तो लकड़ी काट रहा था।

ज्योतिषी ने बड़े ही आश्चर्य से उस आदमी की ओर देखते हुए कहा, "क्यों भाई, तुम कौन हो? क्या तुम सचमुच लकड़ी काटने का ही काम करते हो?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उस आदमी ने उत्तर दिया, "मैं कौन हूं—यह तो तुम देख ही रहे हो! मैं लकड़ी काटने का ही काम करता हूं।"

ज्योतिषी के मन का आश्चर्य और भी अधिक बढ़ गया। उसने आश्चर्य-भरे स्वर में कहा, "तुम लकड़ी काटने का काम करते हो? तुम यह काम कब से कर रहे हो?"

उस आदमी ने उत्तर दिया, जब से मैंने होश संभाला है तब से यही काम कर रहा हूं।"

ज्योतिषी चुप हो गया। उसके हृदय को बड़ा आघात लगा। वह सोचने लगा, उसने इतनी मेहनत से सामुद्रिक शास्त्र को पढ़ा, क्या उसकी मेहनत व्यर्थ गई! सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल से युक्त तलवे वाले मनुष्य को राजा होना चाहिए, पर यह आदमी तो लकड़ी काट रहा है। तो क्या सामुद्रिक शास्त्र झूठा है?

ज्योतिषी का हृदय दुख से मथ उठा। उसे अपनी विद्या पर बड़ा गर्व था पर उसकी विद्या का गर्व चूर-चूर हो रहा था। उसे अपना जीवन व्यर्थ मालूम हो रहा था।

ज्योतिषी ने सोचा, विक्रमादित्य के दरबार में चलकर, उनके पैर के तलवे को देखना चाहिए। यदि उनके पैर के तलवे में ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल न हुए, तो मैं सामुद्रिक शास्त्र को जला दूंगा, जलाकर संन्यासी हो जाऊंगा।

ज्योतिषी विक्रमादित्य के दरबार में गया।

ज्योतिषी ने विक्रमादित्य के पास पहुंच कर उनसे निवेदन किया, "महाराज, मैं सामुद्रिक शास्त्र का पंडित हूं। मैं आपके पैरों के तलवों की रेखाएं देखना चाहता हूं।"

विक्रमादित्य ने ज्योतिषी का बड़ा आदर-सत्कार किया। उसे बैठने के लिए आसन प्रदान किया।

विक्रमादित्य ने ज्योतिषी को बारी-बारी से अपने दोनों पैरों के तलवे दिखाए।

पर यह क्या? विक्रमादित्य के पैरों के तलवों में न तो ऊर्ध्व रेखा थी और न कमल के फूल! ज्योतिषी की आंखों के सामने अंधेरा छा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गया। वह दुखी मन से उठ पड़ा, और बिना कुछ कहे हुए ही जाने लगा।

विक्रमादित्य ने प्रश्न किया, "क्यों ज्योतिषीजी, क्या बात है? मेरे पैरों की रेखाओं को देखकर आप दुखी क्यों हो गए? कुशल तो है! आप बिना कुछ बताए ही क्यों जा रहे हैं?"

ज्योतिषी ने उत्तर दिया, "महाराज, आपके पैरों की रेखाओं को देखने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि सामुद्रिक शास्त्र झूठा है। मैं सामुद्रिक शास्त्र को जलाकर साधु बन जाऊंगा।"

विक्रमादित्य ने पुनः प्रश्न किया, "आखिर बात क्या है? मैं भी तो सुनूं, आप सामुद्रिक शास्त्र को क्यों झूठ बता रहे हैं?"

ज्योतिषी ने उत्तर दिया, "महाराज, सामुद्रिक शास्त्र में लिखा है, जिस मनुष्य के पैरों के तलवों में ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल होते हैं, वह बहुत बड़ा राजा होता है।

"मैंने जंगल में एक ऐसे आदमी को देखा, जिस के पैरों के तलवों में ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल थे, पर वह आदमी लकड़ी काट रहा था। इधर आपके पैरों में ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल नहीं हैं, पर आप राज्य कर रहे हैं!

"महाराज, सामुद्रिक शास्त्र के असत्य होने का इससे बढ़कर प्रमाण और क्या हो सकता है?"

विक्रमादित्य ने ज्योतिषी को ढाढ़स प्रदान किया, उसे बैठने के लिए कहा।

विक्रमादित्य ने ज्योतिषी से कहा, "ज्योतिषीजी, आपने सामुद्रिक शास्त्र तो पढ़ा है, पर अधूरा पढ़ा है।"

ज्योतिषी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने बड़े ही आश्चर्य के साथ कहा, "अधूरा पढ़ा है!"

विक्रमादित्य ने कहा, "हां, अधूरा पढ़ा है। हाथों और पैरों की रेखाओं से ही कोई आदमी बड़ा-छोटा नहीं होता। मनुष्य को बड़ा-छोटा उसके कर्म बनाते हैं। सामुद्रिक शास्त्र में जो कुछ लिखा है, वह झूठ नहीं है। किसी मनुष्य के हाथों-पैरों की रेखाओं को देखते हुए उसके भले-बुरे कर्म पर भी विचार करना चाहिए। आपने जिस लकड़ी काटने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वाले आदमी के पैरों में राज-चिह्न देखे हैं, हो सकता है, उसने कोई बहुत बड़ा पाप किया हो। मेरे पैरों में राज-चिह्न हैं, पर ऊपर नहीं, चमड़ी के नीचे।''

विक्रमादित्य ने ज्योतिषी को अपने पैरों के तलवे की ऊपरी चमड़ी छीलकर दिखाई। आश्चर्य, उसमें ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल— दोनों थे।

ज्योतिषी विक्रमादित्य के चरणों पर गिर पड़ा। उसने कहा, ''मैं धन्य हूं, महाराज, जो आप जैसे ज्ञानी और विवेकवान राजा के राज्य में रहता हूं।''

12

चोरों को दण्ड

रात का समय था।

विक्रमादित्य अपने महल में सो रहे थे। सहसा उनकी नींद टूटी। उन्हें न जाने क्या सूझा? वे वेश बदलकर, तलवार लेकर बाहर निकल पड़े।

विक्रमादित्य गली-कूचे में इधर से उधर घूमने लगे। अचानक उनकी ऐसे चार आदमियों पर दृष्टि पड़ी, जो एक स्थान में बैठकर आपस में राय-सलाह कर रहे थे। वे चारों आदमी चोर थे। किसी के घर में चोरी करने का जाल तैयार कर रहे थे। विक्रमादित्य समझ गए, वे चारों आदमी कौन है? यहां एकान्त में बैठकर क्या कर रहे हैं?

विक्रमादित्य धीरे-धीरे चलकर उनके पास जा पहुंचे।

चोरों के सरदार ने विक्रमादित्य से पूछा, ''तुम कौन ,हो? रात में अकेले क्यों घूम रहे हो?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''जो तुम लोग हो, मैं भी वही हूं। जो तुम सब करना चाहते हो, वही मैं भी करना चाहता हूं।''

सरदार ने विक्रमादित्य की बात का मतलब अपने पक्ष में ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लगाया। उसने समझा, ''यह भी कोई चोर है, जो चोरी करने के उद्देश्य से घूम रहा है।''

चोरों के सरदार ने कहा, ''मैं तुम्हें अपने दल में शामिल कर सकता हूं, पर पहले तुम यह बताओ कि तुम में कौन-सा गुण है!''

विक्रमादित्य ने कहा, ''पहले तुम चारों बताओ, तुम में कौन-से गुण हैं? फिर मैं भी तुम्हें बताऊंगा, मुझ में कौन-सा गुण है।''

चोरों के सरदार ने कहा, ''अच्छी बात है। पहले मैं ही अपना गुण बता रहा हूं—मैं सगुन निकालने में बड़ा चतुर हूं। मेरे द्वारा निकाले गए सगुन के अनुसार कार्य करने से अवश्य कार्य पूरा होता है।''

दूसरे चोर ने कहा, ''मैं जानवरों और चिड़ियों की बोलियों का मतलब अच्छी तरह समझ लेता हूं।''

तीसरे चोर ने कहा, ''मैं किसी भी जगह घुस सकता हूं। न तो मुझे कोई देख सकता है, न पकड़ सकता है।''

चौथे चोर ने कहा, ''मुझे चाहे कितनी ही कड़ी से कड़ी सजा दी जाए, पर उस सजा का मुझ पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता।''

सब से अंत में विक्रमादित्य ने कहा, ''अच्छा अब मेरा भी गुण सुनो। मैं ऐसे स्थानों को जान लेता हूं, जहां धन गड़ा रहता है।''

चोरों का सरदार बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा, ''तब तो तुम बड़े काम के आदमी हो! चलो, हमारे साथ।''

विक्रमादित्य चोरों के दल में मिल गए।

चोरों ने विक्रमादित्य से कहा, ''पहले तुम अपना गुण प्रकट करो। बताओ, कहां धन गड़ा है?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''अवश्य, चलो मेरे साथ।''

चोर विक्रमादित्य को आगे करके चल पड़े। अभी कुछ ही दूर गए थे कि एक चिड़िया बोल उठी, ''चाकू-चूं, चाकू-चूं।''

दूसरे चोर ने, जो चिड़ियों की बोलियों का मतलब समझता था, कहा, ''भाई, आगे जाना ठीक नहीं। चिड़िया सावधान कर रही है।''

पर सरदार ने उसकी बात नहीं मानी। उसने कहा, ''तुम व्यर्थ ही शक कर रहे हो। हो सकता है, तुमने चिड़िया की बात सुनने में भूल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

की हो।''

दूसरा चोर चुप हो गया।

विक्रमादित्य चोरों को राजकीय बगीचे में ले गए। उन्होंने एक जगह को दिखाकर कहा, ''इसके नीचे बहुत बड़ा खजाना है। खोदो, अवश्य मिलेगा।''

चोरों ने जब मिट्टी को हटाकर देखा, तो सचमुच वहां अशर्फियों से भरे हुए हंडे गड़े थे। चोर प्रसन्न हो उठे। वे हंडों में से अशर्फियां निकाल-निकाल कर अपने-अपने थैलों में भरने लगे।

जब चोरों के पास भरने के लिए कोई थैला बाकी न रहा, तो वे हंडों को खुला छोड़कर चल पड़े।

कुछ दूर जाकर चोरों के सरदार ने कहा, ''भाई, अब हम सुरक्षित स्थान पर पहुंच गए हैं। आओ, सब अशर्फियां एक में मिलाकर बराबर-बराबर बंटवारा कर लें।''

पर चोरों के सरदार को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पांचवां चोर वहां नहीं है। उसने बड़े आश्चर्य से अपने साथियों से कहा, ''वह पांचवां आदमी कहां गया? वह सब के पीछे-पीछे तो आ रहा था!''

सरदार के साथियों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने भी बड़े आश्चर्य के साथ कहा, ''हां, पीछे-ही-पीछे तो आ रहा था। न जाने कहां गायब हो गया?''

इसी समय दूर पर बड़े जोरों से गधा चीत्कार कर उठा, ''ढीचों, ढीचों।''

दूसरे चोर ने गधे की आवाज को सुनकर कहा, ''भाई, गधा साफ-साफ कह रहा है खतरा है, बहुत बड़ा खतरा है।''

चोर फिर रुके नहीं। जल्दी-जल्दी अपने घर चले गए।

उधर सवेरा हुआ। चारों ओर यह खबर गूंज गई कि राजा के बगीचे में चोरी हुई है। बगीचे के भीतर जो धन गड़ा था, चोर उसे खोदकर निकाल ले गए। शहर कोतवाल सिपाहियों को लेकर घटनास्थल पर पहुंचा। उसने देखा, तो सचमुच हंडे खुले हुए थे। हंडों के भीतर से बहुत-सी अशर्फियां निकाल ली गई थीं। कुछ अशर्फियां इधर-उधर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बिखरी पड़ी थीं।

कोतवाल ने सिपाहियों को आदेश दिया, ''चाहे जिस प्रकार हो, चोरों को पकड़ा जाए! उन्हें पकड़ कर हाजिर किया जाए।''

सिपाही इधर-उधर छिटक पड़े, गुप्त रूप में चोरों का पता लगाने लगे।

बड़ी दौड़-धूप के बाद चोर पकड़े गए।

कोतवाल ने चारों चोरों को विक्रमादित्य के सामने उपस्थित किया। वह अपने दरबार में राजसिंहासन पर बैठे हुए थे।

चोरों ने जब विक्रमादित्य को देखा, तो उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। वे आपस में एक-दूसरे का मुंह देखने लगे; क्योंकि जिस आदमी ने उन्हें बगीचे के धन का पता बताया था, उसकी सूरत विक्रमादित्य से बिलकुल मिलती थी।

विक्रमादित्य ने चोरों को डांटते हुए कहा, ''तुम सबने बगीचे में चोरी क्यों की? कुशल इसी बात में है कि चोरी का सारा माल लौटा दो।''

चोरों के सरदार ने उत्तर दिया, ''महाराज, हम चोरी का सारा माल लौटा देंगे, पर यदि आप आज्ञा दें तो एक बात पूछूं।''

विक्रमादित्य ने सरदार को बात पूछने की आज्ञा दे दी।

चोरों के सरदार ने हाथ जोड़कर कहा, ''महाराज, जब हम चोरी करने के लिए निकले, तो रास्ते में एक और आदमी मिला। उसने कहा, वह छिपे हुए धन का स्थान बताने में चतुर है। वही आदमी हमें राजा के बगीचे में ले गया। उसी आदमी ने हमें वह जगह बतायी थी, जहां अशर्फियां गड़ी हुई थीं।

''जब हम लोग अशर्फियों को लेकर चले और बंटवारे का समय आया, तो वह आदमी न जाने कहां गायब हो गया! आज तक मैंने ऐसा चोर कहीं नहीं देखा, जो चोरी करने में मदद तो करे, पर जब माल में हिस्सा बांटने का समय आये, तो गायब हो जाए। महाराज, उस आदमी की सूरत-शक्ल बिलकुल आप ही की तरह थी।''

विक्रमादित्य मुस्करा उठे। उन्होंने भरे दरबार में कहा, ''तुम सच

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कह रहे हो! वह आदमी मैं ही था। मैंने ही तुम चारों के गुण सुनकर, अपना यह गुण बताया था कि मैं जमीन के भीतर गड़े धन का पता बता सकता हूं।''

विक्रमादित्य अपनी बात खत्म करके मन-ही-मन सोचने लगे।

कुछ क्षणों के बाद विक्रमादित्य ने पुनः कहा, ''तुम सब चोरी क्यों करते हो? क्या तुम्हें यह मालूम नहीं कि चोरी करना बहुत बड़ा पाप है।''

चोरों के सरदार ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, ''जानता हूं महाराज, पर फिर भी चोरी करनी पड़ती है। यदि चोरी न करूं तो फिर भरण-पोषण किस तरह हो, बाल-बच्चों का जीवन किस प्रकार चले?''

विक्रमादित्य ने कहा, ''तुम सबने चोरी की है। मैं तुम्हें दण्ड दे रहा हूं—चोरी करना छोड़ दो। जितनी अशर्फियां ले गये हो, अपने पास रखो। मैं तुम्हें एक-एक लाख अशर्फियां और दे रहा हूं।''

विक्रमादित्य ने चोरों को छोड़ दिया। उन्हें चार लाख अशर्फियां देने की आज्ञा प्रदान की।

चोर विक्रमादित्य के चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने प्रतिज्ञा की, ''अब हम चोरी कभी नहीं करेंगे।''

दया और सहानुभूति से लोगों के बुरे कर्मों को छुड़ाने वाले विक्रमादित्य की प्रशंसा कौन नहीं करेगा?

13

बलि का कवच

राजा विक्रमादित्य राजसिंहासन पर थे।

मंत्री, सेनापति, सभासद—सभी अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए थे। संसार के बड़े-बड़े पुरुषों के संबंध में चर्चाएं चल रही थीं। कोई किसी के साहस की प्रशंसा कर रहा था, कोई किसी के ऊंचे विचारों के लिए प्रशंसा के पुल बना रहा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक सभासद ने उठ कर निवेदन किया, ''महाराज, पातालपुरी का राजा बलि बहुत बड़ा दानी है। तीनों लोकों में उसके समान दानी कोई नहीं है।''

विक्रमादित्य ने मन-ही-मन बलि के दर्शन का निश्चय किया।

दूसरे दिन विक्रमादित्य ने ताल और वैताल को स्मरण किया। दोनों शीघ्र ही उनके सामने उपस्थित हुए।

विक्रमादित्य ने ताल-वैताल से कहा, ''मैं पातालपुरी के राजा बलि के दर्शन करना चाहता हूं। मुझे पातालपुरी ले चलो।''

ताल-वैताल ने विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया। उन्होंने उन्हें पातालपुरी में पहुंचा दिया।

विक्रमादित्य घूम-घूमकर पातालपुरी को देखने लगे। एक-से-एक सुन्दर भवन बने हुए थे। जिस प्रकार भवन सुन्दर थे, उसी प्रकार उन भवनों में रहने वाले स्त्री-पुरुष भी सुन्दर थे। सभी लोग अपने-अपने कामों में लगे हुए थे। कहीं धर्म-चर्चा हो रही थी, तो कहीं वेद-पाठ हो रहा था; कहीं तरह-तरह की चीजें बनाई जा रही थीं, तो कहीं पहलवान कुश्तियां लड़ रहे थे। कहीं संगीत हो रहा था, तो कहीं विद्यार्थी शास्त्र पढ़ रहे थे। तात्पर्य यह कि चारों ओर चहल-पहल थी, चारों ओर सक्रियता थी।

विक्रमादित्य पातालपुरी के वैभव और उसकी शोभा को देखकर मोहित हो उठे। वह मन-ही-मन बलि के भाग्य और उसके सुप्रबंध की प्रशंसा करने लगे।

विक्रमादित्य पातालपुरी की शोभा को देखते हुए बलि के राजभवन के द्वार पर उपस्थित हुए। द्वार पर प्रहरी खड़े थे।

विक्रमादित्य ने प्रहरियों से कहा, ''मैं उज्जैन का राजा विक्रमादित्य हूं, महाराज बलि के दर्शन करने के लिए आया हूं।''

बलि अपनी राजसभा में राजसिंहासन पर आसीन था। प्रहरी ने उसके पास जाकर विक्रमादित्य के आने की सूचना दी।

बलि ने उत्तर दिया, ''विक्रमादित्य से कहो, लौट जाये। मैं पृथ्वी के किसी निवासी को अपने पास नहीं बुला सकता; क्योंकि पृथ्वी का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अच्छे-से-अच्छा आदमी भी अपने भीतर छल छिपाए रहता है।''

प्रहरी ने बलि का संदेश विक्रमादित्य को सुना दिया।

पर विक्रमादित्य बलि के राजभवन के द्वार पर खड़े रहे। उन्होंने प्रहरी से दूसरी बार कहा, ''मैं बड़ी लालसा से बलि के दर्शन करने के लिए आया हूं। मैं उनके दर्शन किए बिना नहीं जाऊंगा।''

प्रहरी ने बलि के पास जाकर उसे विक्रमादित्य का संदेश दिया।

पर बलि ने फिर वही उत्तर दिया। उसने कहा, ''विक्रमादित्य से कहो, मैं उनसे नहीं मिलूंगा। वह लौट जाएं।''

बलि का संदेश सुनकर विक्रमादित्य बड़े दुखी हुए। उन्होंनें अपमान से क्षुब्ध होकर, अपनी तलवार से ही अपना सिर काट लिया।

विक्रमादित्य का सिर और धड़ जमीन पर अलग-अलग गिर पड़े। बलि के महल का द्वार उनके रक्त से लाल हो उठा।

प्रहरी दौड़कर बलि के पास गया। उसने बलि से निवेदन किया, ''महाराज आपके दर्शन न कर पाने के कारण विक्रमादित्य ने अपने हाथों से ही अपना सिर काट डाला।''

बलि ने प्रहरी को अमृत-कलश देकर कहा, ''विक्रमादित्य के शव पर अमृत छिड़क कर उन्हें जीवित कर दो।''

प्रहरी ने बलि की आज्ञा का पालन किया। उसने विक्रमादित्य के सिर को धड़ से जोड़कर अमृत छिड़क दिया। विक्रमादित्य जीवित हो उठे।

विक्रमादित्य ने पुनः प्रहरी से कहा, ''जाकर बलि से कहो, मैं उनके दर्शन किए बिना कदापि नहीं जाऊंगा।''

प्रहरी ने बलि के पास जाकर निवेदन किया, ''महाराज, मैंने अमृत छिड़क कर विक्रमादित्य को जिला दिया, पर वह जाने के लिए तैयार नहीं हैं। वह कहते हैं, जब तक महाराज के दर्शन नहीं होंगे, वह नहीं जाएंगे।''

पर बलि ने फिर वही उत्तर दिया। उसने कहा, ''उनसे कहो, वह हठ न करें। मैं उनसे नहीं मिल सकता।''

पर फिर भी विक्रमादित्य विचलित नहीं हुए। उन्होंने फिर अपना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सिर काट दिया।

प्रहरी ने बलि की आज्ञा से फिर अमृत छिड़क कर पहले की भांति ही उन्हें जीवित कर दिया।

इसी प्रकार विक्रमादित्य ने कई बार अपने सिर को काटकर फेंक दिया, और कई बार बलि ने उन्हें जीवित कर दिया।

विक्रमादित्य के बार-बार सिर काटने से, आखिर बलि के मन में हलचल मच गई। वह अपनेआप ही यह कहता हुआ उठ पड़ा, "विक्रमादित्य अद्भुत साहसी हैं!"

बलि स्वयं द्वार पर विक्रमादित्य के सामने उपस्थित हुआ। उसने विक्रमादित्य से कहा, "नर-श्रेष्ठ, मैं पृथ्वी के बड़े-बड़े दानियों और धर्मात्माओं से भी नहीं मिला, पर तुमने मुझे अपने त्याग से विवश कर दिया। कहो, तुम क्या चाहते हो?"

विक्रमादित्य ने निवेदन किया, "महाराज, मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे आपके दर्शन हो गये, मानो सब-कुछ मिल गया। मैं आपके दर्शन से धन्य हो गया!, कृतार्थ हो गया।"

बलि प्रसन्न हो उठा। उसने विक्रमादित्य को एक कवच प्रदान करके कहा, "इस कवच से तुम जो भी चीज मांगोगे, वही मिलेगी।"

विक्रमादित्य कवच लेकर, बलि को प्रणाम करके चल पड़े।

ताल-वैताल ने विक्रमादित्य नगर में प्रवेश ही कर रहे थे कि, एक स्त्री के सकरुण विलाप को सुनकर रुक गए। उन्होंने लोगों से पूछा, "यह स्त्री इस प्रकार क्यों रो रही है?"

लोगों ने कहा, "महाराज, इस स्त्री के पति का स्वर्गवास हो गया है। लोग उसे श्मशान ले जा रहे हैं।"

विक्रमादित्य के हृदय में दया उमड़ उठी। उन्होंने स्त्री के पास जाकर उसे बलि का कवच प्रदान किया, कहा, "तुम इस कवच को हाथ में लेकर इससे अपने पति का जीवन मांगो। तुम्हारा पति अवश्य जीवित हो जाएगा।"

स्त्री ने विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया। उसने कवच हाथ में लेकर कहा, "कवच, मैं तुमसे अपने पति का जीवन चाहती हूं।"

स्त्री का यह कहना था कि उसका पति जीवित हो उठा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विक्रमादित्य भी जय-जयकार से आस-पास की धरती ही नहीं, स्वर्ग भी गूंज उठा—बड़े जोरों से गूंज उठा।

14

बुद्धि का चमत्कार

वाराणसी में एक राजा राज्य करता था। राजा का नाम प्रतापमुकुट था। प्रतापमुकुट बड़ा प्रतापी था। उसके बेटे का नाम वज्रमुकुट था। वज्रमुकुट बड़ा हठी था। वह जिस बात के लिए हठ करता था, उसे पूरी करके ही दम लेता था।

एक दिन वज्रमुकुट मंत्री के लड़के के साथ वन में शिकार खेलने के लिए गया। मंत्री का लड़का बड़ा बुद्धिमान और बड़ा अनुभवी था।

वन में एक तालाब था। तालाब के किनारे एक मंदिर था। तालाब में कमल खिले थे। कमलों पर भौंरे गुंजार कर रहे थे। पानी में चकवा और चकवी पक्षी किल्लोल कर रहे थे।

वज्रमुकुट शिकार करते-करते थक गया, तो तालाब पर जा पहुंचा। मंत्री का लड़का तो मंदिर में लेटकर आराम करने लगा, पर राजकुमार सीढ़ियों से नीचे उतरकर तालाब में पानी पीने के लिए गया।

राजकुमार जब पानी पी रहा था, तो सहसा उसकी दृष्टि तालाब के उस पार चली गई। उस पार एक राजकुमारी अपनी सखियों के साथ नहा रही थी।

राजकुमार और राजकुमारी दोनों ने एक-दूसरे को देखा। दोनों एक-दूसरे पर मोहित हो गए।

राजकुमार टकटकी लगाकर राजकुमारी की ओर देखने लगा।

राजकुमारी नहाकर बाहर निकली। उसके हाथ में कमल का एक फूल था। उसने उस पुष्प को कान से लगाकर, फिर दांतों से कुतर कर पैरों के नीचे दबाया, फिर उठाकर हृदय से लगा लिया।

राजकुमारी अपनी सखियों के साथ चली गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर राजकुमार का तो बुरा हाल हो गया। उसे तो अपनी सुध-बुध तक न रही।

राजकुमार जब मंदिर में गया, तो उसके बुरे हाल को देखकर मंत्री के लड़के ने पूछा, "क्या बात है, तुम्हारी सूरत क्यों बदली हुई है?"

पर राजकुमार टाल गया। उसने कहा, "कुछ नहीं, यों ही न जाने क्यों जी घबरा रहा है?"

राजकुमार राजमहल में लौट गया।

राजमहल में राजकुमार का और भी बुरा हाल हो गया। उसे हर क्षण राजकुमारी की याद दुख दिया करती थी। उसका खाना-पीना सब कुछ छूट गया।

मंत्री का लड़का बड़ा चिन्तित हुआ। उसने राजकुमार से बार-बार पूछा, "आखिर, उसे क्या हुआ है? उसे खाना-पीना क्यों नहीं अच्छा लगता?"

पहले तो राजकुमार ने नहीं बताया, पर जब मंत्री का लड़का पीछे पड़ गया, तो बताना ही पड़ा कि उसे खाना-पीना क्यों नहीं अच्छा लगता?

मंत्री के लड़के ने पूछा, "क्या तुम राजकुमारी का पता-ठिकाना जानते हो?"

राजकुमार ने जवाब दिया, "मैं राजकुमारी का पता-ठिकाना कुछ नहीं जानता। वह जब तालाब पर से जाने लगी थी, तो उसने कमल का फूल कान से लगाकर, दांतों से कुतरकर पैरों के नीचे दबा दिया था, फिर उसे उठाकर अपने हृदय से लगा लिया था।"

मंत्री के लड़के ने कहा, "मैं समझ गया, वह कौन है? कहां रहती है और किसकी लड़की है?"

राजकुमार ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा, "क्या तुम समझ गए, वह कौन है? किस तरह समझ गए?"

मंत्री के लड़के ने जवाब दिया, "उसने कमल का फूल अपने कानों से लगाया। इसका मतलब यह है कि यह कर्नाटक की रहने वाली है। उसने कमल के फूल को दांतों से कुतरा। इसका मतलब यह है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कि वह दन्तवाट राजा की पुत्री है। उसने कमल के फूल को पैरों के नीचे दबाया। इसका मतलब यह है कि उसका नाम पद्मावती है। उसने कमल के फूल को अपने हृदय से लगाया। इसका मतलब यह है कि वह मुझसे प्रेम करती है।''

राजकुमार मंत्री के लड़के के पैरों पर गिर पड़ा, बोला, ''तुम तो बड़े बुद्धिमान हो! मुझे राजकुमारी से मिलाने की कृपा करो।''

राजकुमार और मंत्री का लड़का दोनों पर एक प्रकार से तैयार होकर कनार्टक की ओर चल पड़े।

कनार्टक में राजा के महल के पीछे एक बुढ़िया रहती थी, दिन-भर वह चर्खा चलाया करती थी।

राजकुमार और मंत्री का लड़का दोनों बुढ़िया के घर जा पहुंचे, बोले, ''हम दोनों व्यापारी हैं, माल खरीदने आये हैं। अगर अपने घर में रहने के लिए जगह दे दो, तो बड़ी दया हो।''

बुढ़िया के घर में उसे छोड़कर और कोई नहीं था। उसने उन दोनों को अपने घर में टिका लिया।

एक दिन राजकुमार ने बुढ़िया से पूछा, ''माई! क्या तुम्हारा और कोई नहीं है? आखिर तुम्हारी गुजर-बसर किस तरह होती है?''

बुढ़िया ने जवाब दिया, ''मैं राजकुमारी पद्मावती की धाय हूं। मैंने ही उसका पालन-पोषण किया है। गुजर-बसर के लिए मुझे राजमहल से खर्च मिलता है।''

राजकुमार और मंत्री का लड़का—दोनों बड़े प्रसन्न हुए।

एक दिन जब बुढ़िया राजकुमारी के पास जाने लगी, तो राजकुमार ने उससे कहा, ''माई, दया करके राजकुमारी से कहना—वन में तालाब पर जिस युवक से तुम्हारी भेंट हुई थी वह आया है, तुमसे मिलना चाहता है।''

बुढ़िया ने राजकुमारी के पास जाकर, राजकुमार को संदेश दिया।

राजकुमारी ने जवाब में, हाथ में चन्दन लगाकर, बुढ़िया के गाल पर कसकर तमाचा जड़ा, कहा, ''जा, चली जा मेरे पास से!''

बुढ़िया गाल सहलाते हुए लौट गई। उसने राजकुमार से कहा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

''मैंने राजकुमारी को तुम्हारा सन्देश दिया, पर उसने तो हाथ में चंदन लगाकर, मेरे गाल पर तमाचा जड़ दिया।''

पर मंत्री के लड़के ने इसका मतलब दूसरा ही मतलब निकाला। उसने राजकुमार से कहा, ''तुम घबराओ नहीं। राजकुमारी ने हाथ में चंदन लगाकर बुढ़िया के मुंह पर जो तमाचा मारा है, उसका मतलब यह है कि इस समय उजाला पाख है। अंधेरा पाख आने दो, तब मिलना।''

अंधेरा पाख आने पर राजकुमार ने बुढ़िया के द्वारा फिर अपना संदेश भेजा।

पर इस बार राजकुमारी ने अपनी तीन उंगलियों केसर में डुबोकर बुढ़िया के गाल पर तमाचा मारा।

राजकुमार बड़ा दुखी हुआ, पर मंत्री के लड़के ने उसे ढाढ़स बंधाया, ''तुम चिंता न करो। राजकुमारी ने तुमें तीन दिन बाद बुलाया है।''

तीन दिन बाद राजकुमार राजकुमारी से मिला। वह उसे अपने महल के भीतर ले गई।

राजकुमार महल के भीतर राजकुमारी के कमरे में रहने लगा। राजकुमारी उसका बड़ा आदर-सत्कार करती थी, उसे हर प्रकार से सुख और आराम पहुंचाया करती थी।

लगभग एक महीना बीत गया।

राजकुमार को मंत्री के लड़के की याद आई, मां-बाप की याद आई, घर-द्वार की याद आई।

राजकुमार उदास हो उठा। राजकुमारी ने पूछा, ''क्या बात है? तुम उदास क्यों हो?''

राजकुमार ने सब-कुछ सच-सच बता दिया। उसने कहा, ''इसी नगर में उसका मित्र उसकी राह देख रहा होगा। वह अपने मन में क्या सोच रहा होगा? मुझे अब उसके पास जाना चाहिए।''

राजकुमारी ने उत्तर दिया, ''अवश्य जाओ! मेरी ओर से अपने मित्र को भेंट भी देना।''

राजकुमारी ने राजकुमार को कुछ लड्डू दिए और कहा, ''ये अपने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मित्र को दे देना।''

राजकुमार मंत्री के लड़के के पास लौट गया। दोनों एक-दूसरे से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए।

राजकुमार ने मंत्री के लड़के को राजकुमारी की भेंट दी।

पर मंत्री के लड़के ने उन लड्डुओं को नहीं खाया, कहा, ''इनमें जहर मिला है।''

मंत्री के लड़के ने लड्डू एक कुत्ते को खिलाकर सिद्ध कर दिया, उनमें जहर मिला हुआ है, क्योंकि लड्डुओं को खाते ही कुत्ते ने प्राण त्याग दिये।

राजकुमारी के कपट और ईर्ष्या पर राजकुमार का मन बड़ा दुखी हुआ।

पर मंत्री के लड़के ने उसे समझाया, ''तुम चिंता न करो! मैं राजकुमारी से बदला लूंगा, उसे यहां से ले चलूंगा।''

''तुम फिर राजकुमारी के पास जाओ। रात में जब वह सो जाए तो उसके सभी आभूषण उतार लो। फिर उसके गर्दन पर काले रंग से तिल का निशान बनाकर चले आओ।''

राजकुमार ने मंत्री के लड़के कहने के अनुसार ही काम किया। फिर वह राजकुमारी के पास गया। उसके सभी आभूषण लेकर, निशान बनाकर पुनः लौट आया।

मंत्री के लड़के ने राजकुमार से कहा, ''तुम इन आभूषणों को राजा के सुनार के पास बेचने जाओ। जब पकड़े जाओ, तो कह देना—'ये आभूषण तुम्हें तुम्हारे गुरु ने दिए हैं।' इसके बाद जो कुछ होगा, मैं देख लूंगा।''

राजकुमार ने मंत्री के लड़के के कहने के अनुसार ही काम किया। वह पकड़ा गया, राजा के सामने उपस्थित किया गया।

राजा के कहा, ''ये गहने तो राजकुमारी के हैं! तुम्हें कैसे मिले? अवश्य तुमने इन गहनों की चोरी की है।''

राजकुमार ने जवाब दिया, ''महाराज, मैं कुछ नहीं जानता। ये गहने मुझे मेरे गुरु ने दिए हैं। वे बहुत बड़े योगी हैं।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा ने योगी को पकड़ने की आज्ञा दे दी।

मंत्री का लड़का पहले से ही योगी बना बैठा था।

मंत्री का लड़का योगी के रूप में पकड़ा गया। वह राजा के सामने उपस्थित किया गया।

राजा ने मंत्री के लड़के से, जो योगी के वेश में था, कहा, ''ये गहने राजकुमारी के हैं। तुम्हें कहां मिले? अवश्य तुमने इन गहनों की चोरी की है।''

योगी ने जवाब दिया, ''महाराज मैं चोर नहीं हूं, मैं तो योगी हूं। मैं रात में डाकिनी सिद्ध कर रहा था। अचानक वह पहुंची, मुझे अपने सारे गहने दे गई।''

राजा ने बड़े ही आश्चर्य के साथ कहा, ''पर ये गहने तो राजकुमारी के हैं। क्या राजकुमारी डाकिनी है?''

योगी ने जवाब दिया, ''मैं यह नहीं कहता महाराज, राजकुमारी डाकिनी है, पर ये गहने मुझे डाकिनी ने ही दिए हैं। मैंने उसकी गर्दन पर काली स्याही से 'तिल' का निशान भी बना दिया था।''

राजा के मन में संदेह पैदा हो उठा। उसने जब राजकुमारी की गर्दन दिखवाई तो सचमुच गर्दन पर तिल का निशान बना था।

राजा ने राजकुमारी को डाकिनी समझ कर वन में छुड़वा दिया।

मंत्री का लड़का पहले से ही राजकुमार के साथ वन में मौजूद था।

दोनों राजकुमारी को पकड़ कर अपने देश लौट आए।

राजकुमार राजकुमारी के साथ विवाह करके सुख से जीवन बिताने लगा। वह जब तक जीवित रहा, अपने मित्र मंत्री के लड़के की बुद्धि का लोहा मानता रहा।

वैताल ने विक्रमादित्य से कहा, ''महाराज! बताइए तो, राजकुमार, मंत्री का लड़का, राजकुमारी और राजा—इन चारों में दोषी कौन है?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''इन चारों में राजा दोषी है। राजकुमार ने तो अपना कार्य किया, मंत्री के लड़के ने अपने कर्तव्य का पालन किया, और राजकुमारी ने मोह में राजकुमार को न जाने देने का यत्न किया, पर राजा ने बिना सोचे-समझे, बिना जांच-पड़ताल किए ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजकुमारी को महल से निकाल दिया।''

जो बिना सोचे-समझे काम करता है, दोषी वही होता है।

15

स्त्री किसकी है?

प्राचीन काल की बात है।

यमुना के किनारे एक नगर था। नगर का नाम 'धर्मस्थल' था।

'धर्मस्थल' में एक ब्राह्मण रहता था। ब्राह्मण का नाम केशव था। वह यमुना के किनारे बैठकर जप-तप किया करता था।

ब्राह्मण की एक पुत्री थी। पुत्री का नाम मधुमालती था। मधुमालती सुन्दर तो थी ही, बड़ी गुणवती भी थी।

धीरे-धीरे मधुमालती सयानी हुई। उसके पिता और भाइयों को विवाह की चिन्ता हुई। वे उसके लिए योग्य वर ढूंढ़ने लगे।

एक दिन की बात है, ब्राह्मण घर में नहीं था। वह अपने किसी यजमान के घर गया था। उसके तीन बेटे थे, पर वे भी उस समय घर में नहीं थे।

संयोग की बात, दूर के रिश्ते का एक लड़का घर पर आ गया। लड़का रूप-गुण में अद्वितीय था।

मधुमालती की मां ने लड़के को देखा, तो देखते ही लट्टू हो गई। उसने उसके साथ मधुमालती का विवाह पक्का कर लिया।

उधर ब्राह्मण ने भी एक लड़के पर प्रसन्न होकर उसके साथ मधुमालती का विवाह पक्का कर लिया।

उधर ब्राह्मण ने भी एक लड़के पर प्रसन्न होकर, उसके साथ मधुमालती का विवाह पक्का कर दिया।

ऐसा ही ब्राह्मण के बेटों ने भी किया। उन्होंने भी मधुमालती का विवाह एक ब्राह्मण के लड़के से पक्का कर दिया।

लड़की एक, वर तीन-तीन! तीनों वरों में एक का नाम वामन,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दूसरे का नाम विक्रम और तीसरे का नाम मधुसूदन था। तीनों में कोई किसी में कोई किसी से रत्ती-भर कम नहीं था।

ब्राह्मण के सामने चिन्ता का पहाड़ खड़ा हो गया। वह सोचने लगा, 'अब हो तो क्या हो? कन्या एक और वर तीन! किसके साथ कन्या का विवाह हो, किसके साथ न हो?'

पर विधाता ने ब्राह्मण की चिन्ता दूर कर दी।

तीनों वरों की बारातें जब ब्राह्मण के द्वार पर पहुंचीं, तो सांप के काटने से लड़की की मृत्यु हो गई।

लड़की को बचाने के लिए उसके भाइयों और वरों ने बड़ा यत्न किया, बड़ी दौड़-धूप की, पर लड़की बच नहीं सकी।

ब्राह्मण करता तो क्या करता? उसने श्मशान में लड़की का दाह-संस्कार कर दिया।

ब्राह्मण जब दाह-संस्कार करके चला गया, तो तीनों वर जमा हुए। एक ने तो हड्डियां बटोरीं, दूसरे ने राख इकट्ठी की और तीसरा राख शरीर पर मलकर योगी हो गया।

तीनों तीन तरफ चल पड़े। एक ने कंधे पर हड्डियों की गठरी थी, दूसरे के कंधे पर राख की झोली थी और तीसरा पूरा योगी बना हुआ था।

तीनों देश-देश में घूमने लगे।

एक दिन योगी एक ब्राह्मण गृहस्थ के द्वार पर उपस्थित हुआ। भोजन का समय था। ब्राह्मण ने योगी से कहा, "आप इस समय का भोजन मेरे ही घर कीजिए।"

योगी रुक गया।

ब्राह्मण और योगी दोनों एकसाथ भोजन करने बैठे, पर इसी समय एक ऐसी दुर्घटना घटी, जिसके कारण घटना लम्बी बन गई और साथ ही बड़ी रोचक और मनोरंजक भी।

ब्राह्मण की स्त्री जब खाना परोस रही थी, उसका छोटा लड़का आ गया। वह अपनी मां से बोला, "पहले मुझे खाना दो, फिर उसके बाद योगी को दो।" मां ने लड़के को बहुत समझाया, पर बात उसके कंठ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के नीचे नहीं उतरी। वह अपनी मां का आंचल पकड़ कर मचल गया और कहने लगा, ''मैं तो पहले खाना खाऊंगा। तुम्हें भोजन न परोसने दूंगा।''

मां खीझ उठी। उसने बड़े जोर से लड़के को झटक दिया। वह दूर, एक पत्थर पर जा गिरा। सिर फट गया, लड़के का दम निकल गया।

योगी का मन दुख और घृणा से भर गया। वह चौके से उठ पड़ा। उसने ब्राह्मण से कहा, ''तुम्हारी स्त्री ने बालक की हत्या की है! वह पापिनी है। मैं इसके हाथ का बनाया हुआ भोजन ग्रहण न करूंगा।''

पर ब्राह्मण ने योगी को जाने नहीं दिया। उसने कहा, ''आप हमारे अतिथि हैं। बिना भोजन किये हुए आप नहीं जा सकते। मैं अभी अपनी स्त्री को हत्या के पाप से छुड़ाये दे रहा हूं।''

ब्राह्मण के पास संजीवनी विद्या की पुस्तक थी। वह शीघ्र ही पुस्तक निकाल लाया। उसने पुस्तक में लिखे हुए एक मंत्र को पढ़कर मृत बालक के शरीर पर पानी का छींटा दिया। आश्चर्य, बालक जीवित हो उठा।

इस अनोखे चमत्कार को देखकर योगी खाना-पीना सब भूल गया। वह सोचने लगा, यदि किसी तरह उक्त पुस्तक उसके हाथ लग जाती, तो वह भी मधुमालती को जिला लेता।

योगी खा-पीकर, उस दिन रात में ब्राह्मण के ही घर रह गया।

रात में जब ब्राह्मण और उसकी स्त्री सो गई, तो योगी चुपचाप उठा और उसकी संजीवनी विद्या की पुस्तक लेकर चलता बना।

पर योगी के पास मधुमालती की हड्डियां, राख आदि कुछ नहीं था। फिर वह संजीवनी विद्या का प्रयोग करता तो किस प्रकार करता? वह चिन्तित हो उठा।

योगी उन दोनों वरों को ढूंढ़ने लगा, जिनके पास मधुमालती के शरीर की हड्डियां और राख थीं।

संयोग की बात, योगी ने उन दोनों को ढूंढ़ निकाला।

दोनों यह जानकर बड़े प्रसन्न हुए कि योगी के पास एक ऐसी विद्या है, जिससे वह मधुमालती को जीवित कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तीनों वर श्मशान में उपस्थित हुए। तीनों ने मधुमालती की हड्डियों और राख को एक स्थान में सजाकर रखा। योगी ने मंत्र पढ़कर उन पर पानी का छींटा दिया। आश्चर्य, मधुमालती जीवित हो उठी।

मधुमालती के जीवित होने पर प्रश्न यह खड़ा हुआ, वह किसकी स्त्री है? तीनों में से प्रत्येक, अपनेआप को मधुमालती का पति बता रहा था।

तीनों माधुमालती के लिए तर्क-वितर्क करने लगे।

सहसा वैताल उपस्थित हुआ। उसने सब-कुछ सुनकर तीनों से कहा, "चलो विक्रमादित्य के पास चलो। वही सब-कुछ सुनकर न्याय करेंगे— स्त्री किसकी है?"

वैताल तीनों को लेकर विक्रमादित्य की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर कहा, "महाराज, बताइए, स्त्री किसकी है?"

महाराज विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "यह स्त्री उसकी है जिसने मधुमालती की राख इकट्ठी की थी।"

वैताल को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने प्रश्न किया, "ऐसा क्यों, महाराज?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "जिस वर ने मधुमालती की हड्डियां इकट्ठी कीं, वह तो उनका लड़का हुआ, क्यों लड़का ही हड्डियां इकट्ठी करता है। जिस वर ने उसे जीवन-दान दिया, वह पिता के समान है, क्योंकि पिता ही जीवन-दान देता है। 'राख' बटोरने का काम प्रेमियों के द्वारा होता है। अतः जिसने राख इकट्ठी की है, वही प्रेमी और पति है।"

विक्रमादित्य के न्याय को सुनकर वैताल और तीनों वर बड़े प्रसन्न हुए। वे उनकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हुए उनके दरबार से चले गए।

पर वैताल तो विक्रमादित्य के गुणों और न्याय पर मुग्ध होकर उन्हीं के साथ-साथ रहने लगा।

वैताल ने विक्रमादित्य के साहस, शौर्य और न्याय पर अपनेआप को निछावर कर दिया था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

16

वीरवर की स्वामि-भक्ति

प्राचीन काल की बात है। वर्धमान नगर में एक राजा राज्य करता था। राजा का नाम रूपसेन था। रूपसेन बड़ा प्रतापी और यशस्वी था। उसके प्रताप और यश पर लक्ष्मी जी भी विमुग्ध रहा करती थीं।

दोपहर का समय था। रूपसेन राजसिंहासन पर विराजमान था, राज-काज में लगा हुआ था।

सहसा राजा के सामने एक आदमी उपस्थित हुआ। वह हथियारों से लैस था, हाथ जोड़कर राजा से बोला, "महाराज, मैं एक सिपाही हूं, नौकरी चाहता हूं।"

राजा ने आदमी की ओर देखा, उसके अंग-अंग से साहस और वीरता टपक रही थी। राजा ने पूछा, "क्या नाम है, कौन-सा काम करोगे, क्या वेतन लोगे?"

आदमी ने उत्तर दिया, "महाराज, नाम तो मेरा वीरवर है। आप जो कहेंगे, वही काम करूंगा। वेतन प्रतिदिन एक हजार सोने की अशर्फियां लूंगा।"

राजा चमत्कृत हो उठा, 'प्रतिदिन एक हजार अशर्फियां! यह तो बहुत है। इसके बदले में यह काम कौन स .रेगा?' राजा मन-ही-मन सोचने लगा।

राजा ने सोचते हुए जवाब दिया "अच्छी बात है! तुम्हें प्रतिदिन एक हजार सोने की अशर्फिया मिलेंगी। तुम्हें रात में पहरेदारी करनी पड़ेगी।"

वीरवर नौकर हो गया।

वीरवर के परिवार में वह, उसकी स्त्री, उसका लड़का और उसकी लड़की थी।

वीरवर ने पहले दिन जब रात्रि में पहरेदारी की, तो उसे वेतन में एक हजार अशर्फियां मिल गईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वीरवंर ने आधी अशर्फियां साधु-संन्यासियों में बांट दीं। जो बचीं, उनमें से फिर आधी गरीबों और दीन-दुखियों को दे दीं। जो बचीं, उनमें से फिर आधी अंधों-लंगड़ों और अपाहिजों को दे दीं। जो शेष रह गईं, उन्हें अपने खाने-पीने में खर्च किया।

वीरवर प्रतिदिन अपने वेतन को इसी प्रकार खर्च किया करता था।

वीरवर बड़ा धर्मात्मा था। वह धर्मात्मा होने के साथ-ही-साथ बड़ा कर्तव्यपालक और शूरवीर भी था।

वीरवर के समान ही उसकी स्त्री और सन्तानों में भी धर्म के प्रति बड़ा प्रेम था। प्रेम, साहस, कर्तव्य-पालन ने वीरवर के घर को स्वर्ग बना दिया था।

रात का समय था। वीरवर हथियारों से लैस होकर पहरा दे रहा था। सहसा दूर से किसी के रोने की आवाज आने लगी।

राजा की नींद खुल गई। उसने उस आवाज को सुनकर वीरवर को बुलाया। कहा, ''वीरवर, पता तो लगाओ, यह कौन रो रहा है?''

आधी रात का समय था। रोने की आवाज दूर—बड़ी दूर से आ रही थी। ऐसा लग रहा था, मानो किसी पर दुख की बिजली गिर पड़ी हो।

वीरवर राजा को प्रणाम कर, पता लगाने के लिए चल पड़ा।

राजा के मन में विचार कौंध उठा, ''देखना चाहिए, वीरवर पता लगाता है या झूठमूठ बहाना बना देता है!''

राजा वेश बदल कर वीरवर के पीछे-पीछे दबे पांव चलने लगा।

वीरवर रोने की आवाज के सहारे, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। आखिर वह उस स्थान में जा पहुंचा, जहां एक स्त्री बैठी हुई, सकरुण स्वर में विलाप कर रही थी।

वीरवर ने उस स्त्री से प्रश्न किया, ''मां, तुम कौन हो? रात में यहां बैठकर क्यों विलाप कर रही हो?''

स्त्री ने रोते हुए उत्तर दिया, ''क्या करोगे सुनकर! मेरा दुख ऐसा हुआ है, जिसे कोई दूर नहीं कर सकता।''

वीरवर ने कहा, ''मां, तुम अपने मन का दुख बताओ तो। मैं तुम्हें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वचन देता हूं, तुम्हारे दुख को अवश्य दूर करूंगा।''

स्त्री ने जवाब दिया, ''मेरे देश का राजा बड़ा धर्मात्मा है। मुझे दुख है, कल सूर्य डूबने के साथ ही साथ उसकी मृत्यु हो जायेगी। मैं राजा की राज्यलक्ष्मी हूं। मुझे दुख है कि राजा के मर जाने पर मैं कहां रहूंगी, क्योंकि उसके समान धर्मात्मा और यशस्वी राजा धरती पर कोई दूसरा नहीं है।''

स्त्री की आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी, वह रह-रहकर धरती को अपने आंसुओं से सींचने लगी।

वीरवर मन-ही-मन सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते दूसरा प्रश्न किया, ''मां, क्या ऐसा कोई उपाय है, जिससे राजा के प्राण बच सकते हैं?''

स्त्री ने जवाब दिया, ''हां है! सामने की पहाड़ी पर देवी का मंदिर है। यदि कोई धर्म-प्रेमी मनुष्य उस मंदिर में अपने पुत्र की बलि दे, तो राजा के प्राण बच सकते हैं।''

वीरवर बोल उठा, ''मां, तुम दुखी न हो! मैं इस काम को करूंगा। मैं राजा को अवश्य मरने से बचाऊंगा।''

वीरवर अपने घर की ओर चल पड़ा।

राजा ने छिपकर स्त्री और वीरवर बातचीत सुनी। वह सुनकर आश्चर्यचकित हो उठा। जब वीरवर अपने घर की ओर चला, तो राजा भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ा।

वीरवर ने अपने घर पहुंच कर, अपनी स्त्री को जगा कर, उसे सब-कुछ बताया। स्त्री जब तक कुछ उत्तर दे, उसके पहले ही लड़का, जो पास ही सो रहा था, बोल उठा, ''पिताजी, यह तो बड़े पुण्य का काम है! आप जिस राजा का नमक खाते हैं, उसके प्राण बचाने के लिए आपको मेरा बलिदान अवश्य कर देना चाहिए। मैं सहर्ष मरने के लिए तैयार हूं।''

वीरवर और उसकी स्त्री दोनों— आश्चर्यचकित होकर लड़के के मुंह की ओर देखने लगे।

लड़के ने पुनः कहा, ''पिताजी, एक-न-एक दिन तो मरना है ही!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यह तो बड़ी अच्छी बात होगी, मैं किसी की भलाई में मरूंगा। चलिए, देर न कीजिए। अच्छे और पवित्र काम में देर नहीं करनी चाहिए।''

वीरवर की स्त्री ने लड़के की ओर देखते हुए कहा, ''तुम धन्य हो पुत्र! तुमने मेरी गोद में जन्म लेकर, मेरे जीवन को सार्थक बना दिया।''

वीरवर की पुत्री भी बोली, ''और मैं भी तुम्हारे जैसा भाई पाकर धन्य हो गई, भैया!''

वीरवर प्रसन्न हो उठा। वह अपने पूरे परिवार को लेकर, मंदिर की ओर चल पड़ा।

राजा वीरवर के पीछे तो लगा ही हुआ था! वह भी उसके पीछे-पीछे मंदिर की ओर चल पड़ा।

वीरवर ने मंदिर में पहुंच कर देवी की मूर्ति के सामने अपने लड़के को बिठा दिया। लड़का दोनों हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर बैठ गया। वीरवर ने देखते-ही-देखते तलवार से उसका सिर काट कर देवी के चरणों पर चढ़ा दिया।

वीरवर की स्त्री का हृदय कांप उठा। उसने कांपती हुई वाणी में वीरवर से कहा, ''स्वामी, जब बेटा ही नहीं रहा, तो मैं रहकर क्या करूंगी?''

वीरवर की स्त्री ने भी देखने-ही-देखते अपने हाथ में तलवार लेकर अपना सिर काट कर गिरा दिया।

भाई और मां की मृत्यु से वीरवर की पुत्री का हृदय कांप उठा। उसने वीरवर की ओर देखते हुए कहा, ''पिताजी, जब भाई और मां ही नहीं रहे, तो मैं ही रहकर क्या करूंगी?''

वीरवर की पुत्री ने भी अपने हाथों से ही अपना सिर काटकर गिरा दिया।

वीरवर अपनी स्त्री, पुत्र और पुत्री के बलिदान को देखकर कांप उठा। उसने सोचा, 'जब परिवार में कोई नहीं रहा, तो मैं ही रहकर क्या करूंगा?'

वीरवर ने तलवार से अपना मस्तक काटकर फेंक दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वीरवर और उसके परिवार के बलिदान को देखकर राजा का हृदय कांप उठा। उसने सोचा, 'मुझे धिक्कार है! मेरे प्राण को बचाने के लिए वीरवर जैसा साहसी और वीर कर्तव्य-पालक मनुष्य पूरे परिवार के साथ संसार से चला गया! फिर अब मैं ही जीवित रहकर क्या करूंगा?'

राजा भी अपना मस्तक काटने के लिए उद्यत हो उठा।

पर राजा अपना मस्तक काटे, उसके पहले ही देवी ने प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया, कहा, ''नहीं, तुम अपना मस्तक मत काटो! मैं तुम्हारी वीरता, शूरता और धर्म-प्रियता पर प्रसन्न हूं। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए?''

राजा ने उत्तर दिया, ''मां, यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो, तो वीरवर और उसके कुटुम्ब को भी जीवित कर दो।''

देवी ने वीरवर और उसके कुटुम्ब को अमृत की वर्षा करके जीवित कर दिया।

राजा का हृदय आनन्द और हर्ष से भर उठा। उसने वीरवर को हृदय से लगा लिया, उसे अपना आधा राज्य देकर सिपाही से राजा बना दिया।

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, ''महाराज, बताइए! वीरवर, राजा और वीरवर के कुटुम्बियों में आप सर्वश्रेष्ठ कहेंगे?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''राजा को!''

वैताल ने पुनः प्रश्न किया, ''आप वीरवर को सर्वश्रेष्ठ क्यों नहीं कहेंगे?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''वीरवर राजा का पहरेदार था। राजा का प्राण बचाना उसका धर्म और कर्तव्य था।

''वीरवर के कुटुम्बियों के बलिदान में उनका अपना मोह था।

''पर राजा के बलिदान की भावना विशुद्ध धर्म से प्रेरित थी। अतः राजा को ही सर्वश्रेष्ठ कहना चाहिए।''

वैताल राजा के न्याय की प्रशंसा करने लगा—पुनः-पुनः प्रशंसा करने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

17

दुष्टता का फल

बहुत दिनों पूर्व की बात है।

इलापुर नगर में एक सेठ रहता था। सेठ का नाम महाधन था। महाधन के पास धन-दौलत, जमीन-जायदाद सब-कुछ था, पर सन्तान नहीं थी। सेठ सन्तान के बिना बहुत दुखी रहा करता था।

सेठ सन्तान के लिए तीर्थ-व्रत किया गया था। गरीबों, दुखियों और ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दिया करता था।

भगवान की दया! सेठ के घर में एक लड़के ने जन्म लिया। सेठ ने बड़े चाव से लड़के का नाम कर्णकीना रखा।

कर्णकीना और बड़ा हुआ। वह कुछ पढ़-लिख भी गया। उसकी बुरे लड़कों से संगति हो गई। वह बुरे-बुरे कामों में फंस गया—जुआ खेलने लगा, शराब पीने लगा।

कर्णकीना ज्यों-ज्यों बड़ा होने लगा, त्यों-त्यों उसकी बुरी आदतों में पंख लगने लगे। वह दोनों हाथों से धन उड़ाने लगा, अपने मां-बाप की मान-मर्यादा को कुचलने लगा।

सेठ मन-ही-मन बड़ा दुखी हुआ। उसके मन का दुख इतना बढ़ा कि उसने दम तोड़ दिया।

सेठ जब मर गया, तो कर्णकीना पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गया। वह बिना किसी डर के बुरे रास्ते पर दौड़ने लगा, बुरे कामों में रुपया पानी की तरह खर्च करने लगा।

इसका फल यह हुआ कि कर्णकीना कंगाल हो गया। वह कौड़ी-कौड़ी के लिए मोहताज हो गया। यहां तक कि रोटियों के भी लाले पड़ गए।

कर्णकीना जब भूखों मरने लगा, तो घर-द्वार छोड़कर परदेस के लिए निकल पड़ा। वह घूमता-घामता चन्द्रपुर में पहुंचा।

चन्द्रपुर में एक धनी सेठ रहता था। उसका नाम हेमगुप्त था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसकी एक लड़की थी। लड़की का नाम रत्नावली था। वह विवाह के योग्य हो गई थी। हेमगुप्त उसके विवाह के लिए वर खोज रहा था।

कर्णकीना इधर-उधर चक्कर काटता हुआ हेमगुप्त के पास पहुंचा। उसने अपना और अपने पिता का नाम बताकर कहा, ''मैं जहाज पर माल लादकर व्यापार के लिए निकला था, पर मेरा जहाज समुद्र में डूब गया। मेरे पास अब कुछ भी नहीं रह गया है। खाली हाथ घर लौटने में लज्जा लग रही है। अतः आपकी दया और शरण चाहता हूं।''

कर्णकीना सूरत-शक्ल का अच्छा था। उसकी कहानी सुनकर हेमगुप्त के मन में दया उत्पन्न हो उठी। उसने कर्णकीना को अपने घर में रख दिया।

कर्णकीना बड़े सुख-चैन से हेमगुप्त के घर में रहने लगा।

हेमगुप्त ने सोचा, 'कर्णकीना देखने-सुनने में अच्छा है। उसका बाप बहुत बड़ा धनी है। क्यों न उसके साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया जाए?'

हेमगुप्त ने इस सम्बन्ध में अपनी स्त्री से राय-सलाह की। स्त्री को इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी? वह तो हर्ष से नाच उठी। उसने कहा, ''जब ऐसा सुयोग्य वर अपनेआप ही मिल गया है, तो देर क्यों करते हो? झटपट उसके साथ रत्नावली का विवाह कर दो न।''

फिर तो हेमगुप्त ने कर्णकीना और रत्नावली को विवाह के सूत्र में बांध दिया।

कर्णकीना पहले हेमगुप्त के घर में अतिथि के रूप में रहता था; पर जब रत्नावली के साथ उसका विवाह हो गया, तो जामाता के रूप में बड़े ठाट-बाट और बड़े सुख-आराम के साथ रहने लगा।

खाने-पीने का आराम, नौकरों-चाकरों की जी हुजूरी! कर्णकीना का जीवन राजकुमारों की तरह बीतने लगा।

इसी तरह कई मास बीत गए।

एक दिन कर्णकीना ने रत्नावली से कहा, ''मुझे अपना घर छोड़े हुए बहुत दिन बीत गए। अब मैं अपने घर जाना चाहता हूं! अपने माता-पिता से आज्ञा लेकर तुम भी मेरे साथ चलो।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रत्नावली ने जब अपने माता-पिता से चर्चा की, तो उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उसे ससुराल जाने की आज्ञा दे दी।

हेमगुप्त ने शुभ दिन और शुभ मुहूर्त देखकर, रत्नावली को विदा कर दिया। दहेज में बहुत से गहने-कपड़े, माल-असबाब और एक दासी भी दी।

कर्णकीना रत्नावली को पालकी पर बिठाकर, सारे माल-असबाब के साथ अपने घर की ओर चल पड़ा।

रास्ते में एक वन मिला। कर्णकीना ने रत्नावली से कहा, ''वन में चोर-डाकुओं का बड़ा भय रहता है! तुम अपने सारे गहने मुझे दे दो! जब घर पहुंचेंगे, तो फिर हम तुम्हें सभी गहने पहना देंगे।''

रत्नावली को इसमें आपत्ति ही क्या होती? उसने अपने सभी गहने उतार कर कर्णकीना को दे दिए।

पर कर्णकीना के मन में तो बुराई थी। कुछ आगे बढ़ने पर उसने कहारों को तो मार-पीटकर भगा दिया, और रत्नावली को, उसकी दासी सहित कुएं में ढकेल दिया। स्वयं सारे गहने लेकर चम्पत हो गया।

कर्णकीना घर पहुंच कर फिर बुरे कामों में धन खर्च करने लगा।

उधर रत्नावली कुएं में गिरने पर भी मरने से बच गई। उसकी दासी भी बच गई। कुआं पुराना था। उसमें पानी बिलकुल नहीं था। भीतर घास-फूस और छोटे-छोटे पौधे उगे हुए थे।

रत्नावली कुएं में गिरने पर, जोर-जोर से विलाप करने लगी। 'बचाओ-बचाओ' की आवाज आने लगी।

संयोग की बात, उधर से एक ऊंट-सवार निकला। वह 'बचाओ, बचाओ' की आवाज सुनकर कुएं पर जा पहुंचा। उसने कुएं में झांककर देखा, तो भीतर दो स्त्रियां दिखाई पड़ीं, जो रह-रहकर सकरुण स्वर में विलाप कर रहीं थीं।

ऊंट-सवार के मन में दया पैदा हो उठी। उसने रत्नावली और उसकी दासी को कुएं से बाहर निकाल दिया।

रत्नावली ने ऊंट-सवार से कहा, ''मैं चन्द्रपुर के हेमगुप्त की लड़की हूं। मैं अपने पति के साथ ससुराल जा रही थी। अचानक डाकुओं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ने हम पर हमला कर दिया। डाकुओं ने हमें तो कुएं में धकेल दिया, पर हमारे पति को माल-असबाब सहित अपने साथ ले गए।''

ऊंट-सवार ने रत्नावली को हेमगुप्त के घर पहुंचा दिया।

रत्नावली ने अपने माता-पिता से वही बात कही, जो ऊंट सवार से कही थी।

हेमगुप्त को बड़ा दुख हुआ था। उसने कहा, ''बेटी, तुम गहनों-कपड़ों की चिन्ता न करो! रही बात तुम्हारे पति की! यदि डाकू तुम्हारे पति को ले गए हैं, तो एक-न-एक दिन वे धन मांगने मेरे पास अवश्य आयेंगे। जब वे धन मांगने के लिए आयेंगे, तो मैं उन्हें धन देकर तुम्हारे पति को छुड़वा लूंगा।''

रत्नावली करती तो क्या करती है? वह धैर्य धर कर अपने पिता के घर रहने लगी।

उधर कर्णकीना ने बुरे कामों में, रत्नावली के सारे जेवर उड़ा दिए। वह फिर पहले की तरह कंगाल हो गया, फिर पहले की तरह भूखों मरने लगा।

कर्णकीना ने फिर एक दूसरा जाल रचा। उसने सोचा, फिर हेमगुप्त के पास चलकर उसे फांसना चाहिए; क्योंकि उसे तो यह मालूम था कि उसने रत्नावली को कुएं में धकेल दिया है। अवश्य रत्नावली कुएं में गिरकर मर गई होगी! उसे क्या पता था कि रत्नावली जीवित है, अपने पिता के घर पहुंच गई है।

कर्णकीना फिर हेमगुप्त के घर पहुंच गई। उसने सोचा था, वह हेमगुप्त से कहेगा, उसके धेवता पैदा हुआ है। धेवता पैदा होने की खुशी में वह अवश्य, बहुत-सा माल-असबाब उसे उपहार में देगा।

पर कर्णकीना हेमगुप्त से मिले, इसके पहले ही रत्नावली ने उसे देख लिया। उसने उसे अपने पास बुलाकर कहा, ''देखिए, जो कुछ हुआ, उसे भूल जाइए। हमने अपने माता-पिता से यह नहीं कहा है कि आपने हमें कुएं में धकेल दिया था; बल्कि यह कहा है कि डाकुओं ने हमला करके हमारा माल-असबाब छीन लिया। हमें तो कुएं में धकेल दिया, पर आपको पकड़ कर अपने साथ ले गए हैं। आप भी मेरे माता-पिता से कुछ और न कहकर यही कहेंगे।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कर्णकीना का हृदय बासों उछल पड़ा उसने रत्नावली की प्रशंसा करते हुए कहा, "सचमुच तू लक्ष्मी है, पूजने योग्य है।"

कर्णकीना जब हेमगुप्त से मिला, तो उसने उससे वे ही सभी बातें कहीं जो उसे रत्नावली ने सिखाई थीं। हेमगुप्त की प्रसन्नता की सीमा नहीं थी। कर्णकीना के लौट आने के कारण उसके हृदय में हर्ष का सागर उछलने लगा।

कर्णकीना फिर हेमगुप्त के घर में रहने लगा। उसका फिर वही आदर-सत्कार, उसकी फिर वही सेवा-टहल! कर्णकीना के दिन बड़े सुख आराम के साथ बीतने लगे।

पर कर्णकीना के मन में बुराई और दुष्टता ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी। यद्यपि रत्नावली ने उसके साथ सज्जनता का बर्ताव किया, पर फिर भी उसके मन की वह दुष्टता न गई, जो उसके मन के भीतर थी।

रात का समय था। कर्णकीना रत्नावली के पास सो रहा था। उसके मन की दुष्टता जाग उठी। वह चुपके से उठा, रत्नावली के सारे जेवर लेकर चम्पत हो गया।

पर कर्णकीना ज्यों ही वन के भीतर पहुंचा, उसे सिंह ने फाड़कर खा डाला।

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज, बताइए, कर्णकीना और रत्नावली—दोनों में दोष किसका अधिक है?"

महाराज विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "दोष दोनों का है। कर्णकीना का दोष है उसकी दुष्टता, पर रत्नावली का दोष यह है कि उसने दुष्ट का विश्वास किया!"

वैताल विक्रमादित्य के विचार सुनकर प्रसन्न हो उठा।

18

धोबी की स्त्री

एक नगर में एक राजा राज्य करता था। राजा का नाम धर्मशील और उसके मंत्री का नाम अंधक था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

धर्मशील बड़ा धर्मात्मा था, पर उसकी कोई सन्तान नहीं थी। वह सन्तान के बिना बहुत दुखी रहा करता था।

एक दिन मंत्री ने राजा से कहा, ''महाराज, मां दुर्गा की पूजा-आराधना करने से आदमी को सब कुछ मिल जाता है। आप दुर्गा का एक मन्दिर बनवा कर उनकी पूजा-आराधना करें, आपकी कामना अवश्य पूर्ण होगी।''

मंत्री की बात राजा को जांच गई। वह दुर्गा मां का मंदिर बनवा कर उनकी पूजा-आराधना में लग गया।

दो-तीन वर्ष बीत गए।

एक दिन रात का समय था। राजा मन्दिर में दुर्गा के ध्यान में डूबा हुआ था। उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे। अचानक राजा के कानों में आवाज गूंज उठी, 'राजा, मैं तुम्हारी सेवा-भक्ति से तुम पर प्रसन्न हूं। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए?'

वह आवाज दुर्गा मां की थी।

राजा ने आंखें खोलकर देखा, चारों ओर एक सुन्दर प्रकाश फैला हुआ था।

राजा ने सिर झुकाकर, दोनों हाथ जोड़कर कहा, ''मां, मेरे पास धन-दौलत सब-कुछ है। बस, एक पुत्र नहीं है। कृपा करके मुझे एक पुत्र दे दो।''

मन्दिर में आवाज गूंज उठी, 'तथास्तु! राजा, तुम्हारे घर में महाबली पुत्र का जन्म होगा।'

मां दुर्गा के आशीर्वाद से सचमुच राजा के घर में एक तेजस्वी पुत्र ने जन्म लिया।

राजा ने बाजे-गाजे के साथ मां दुर्गा की पूजा की। पूजा के बाद बहुत-से गरीबों और ब्राह्मणों को भोजन दिया।

संयोग की बात, राजा जिस समय गरीबों और ब्राह्मणों को भोजन दे रहा था, एक धोबी का जवान लड़का उपस्थित हुआ। वह किसी दूसरे नगर का निवासी था, पर कुछ दिनों से उसी नगर में रह रहा था।

धोबी के लड़के ने एक आदमी से प्रश्न किया, ''भाई, राजा इन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गरीबों और ब्राह्मणों को भोजन क्यों दे रहा है?''

उस आदमी ने जवाब दिया, ''मां दुर्गा के आशीर्वाद से राजा के घर में पुत्र ने जन्म लिया है। राजा यह सब पुत्र-प्राप्ति की प्रसन्नता में कर रहा है?''

धोबी के लड़के ने उस आदमी से दूसरा प्रश्न किया, ''क्या मां दुर्गा के आशीर्वाद से मनुष्य की कामनाएं पूरी हो जाती हैं?''

उस आदमी ने जवाब दिया, ''हां, अवश्य पूरी हो जाती हैं।''

धोबी का लड़का मन-ही-मन सोच-विचार करने लगा।

बात यह थी कि धोबी का लड़का उसी नगर के एक धोबी की लड़की से विवाह करना चाहता था, पर वह किसी भी तरह विवाह करने के लिए तैयार नहीं हो रहा था।

धोबी के लड़के ने सोचा, 'वह भी दुर्गा मां के मन्दिर में जाकर, क्यों न उनसे उनका आशीर्वाद मांगे! कौन जाने, मां दुर्गा उसकी भी सुन लें!'

धोबी का लड़का दुर्गा मां के मन्दिर में जा पहुंचा। उसने दुर्गा की मूर्ति के सामने खड़े होकर हाथ जोड़कर कहा, ''मां! यदि तू मेरी मनोकामना पूर्ण कर दे तो मैं तुझे अपने मस्तक की भेंट चढ़ाऊंगा।''

धोबी का लड़का अपने घर लौट गया।

घर लौटने पर भी उसके मन में धोबी की लड़की की याद बराबर बनी रही। वह उसकी याद में खाना-पीना और घर का काम-काज भी भूल गया। उसका शरीर धीरे-धीरे दुर्बल होने लगा।

एक ही लड़का था! धोबी को बड़ी चिन्ता हुई। उसने अपने लड़के की बड़ी दवा-दारू की, पर कोई फल नहीं निकला।

आखिर, किसी तरह धोबी को लड़के की बीमारी के कारण का पता चल गया। उसने उससे उस लड़की के पिता का पता-ठिकाना मालूम किया, जिसके साथ वह विवाह करना चाहता था।

धोबी लड़की के पिता के घर जा पहुंचा। उसने अपने लड़के का हाल बताकर उससे निवेदन किया, ''भाई, एक ही लड़का है। उसकी जान केवल तुम्हारी लड़की के साथ विवाह होने से ही बच सकती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मुझ पर दया करो! अपनी लड़की का विवाह मेरे लड़के के साथ दो।''

दूसरे धोबी के मन में दया पैदा हो उठी। उसने पहले धोबी के लड़के के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया।

धोबी का लड़का अपनी स्त्री को विदा करा कर अपने घर ले गया, सुख से अपना जीवन बिताने लगा।

कई वर्ष बीत गए।

एक दिन अचानक धोबी के लड़के के पास ससुराल से निमंत्रण-पत्र आ गया। ससुराल में साले का विवाह हो रहा था। उसे बड़े आदरपूर्वक पत्नी-सहित बुलाया गया था।

धोबी का लड़का प्रसन्न हो उठा। वह अपनी पत्नी और एक मित्र के साथ ससुराल की ओर चल पड़ा।

धोबी का लड़का जब अपनी ससुराल के पास पहुंचा तो नगर के बाहर उसे दुर्गा का वही मंदिर दिखाई पड़ा, जिस मन्दिर में उसने हाथ जोड़कर कहा था, 'मां! यदि तुमने मेरी मनोकामना पूर्ण कर दी, तो मैं तुझे अपने मस्तक की भेंट चढ़ाऊंगा।'

धोबी के लड़के के हृदय के तार झनझना उठे। वह खड़ा होकर सोचने लगा, 'मां, दुर्गा के आशीर्वाद से मेरी मनोकामना तो पूर्ण हो गई, पर मैंने अपने वचन का पालन अब तक नहीं किया। मैं बड़ा पापी और कृतघ्न हूं।'

धोबी के लड़के ने अपने मित्र और पत्नी से कहा, ''तुम दोनों यही रुको। मैं मन्दिर में मां दुर्गा का दर्शन करने जा रहा हूं।''

धोबी का लड़का मन्दिर में जा पहुंचा। उसने दुर्गा मां की मूर्ति के सामने खड़े होकर, तलवार से अपना मस्तक काटकर उनके चरणों पर चढ़ा दिया।

जब धोबी के लड़के के लौटने में बहुत देर हो गई तो लड़के के मित्र ने उसकी स्त्री से कहा, ''तुम यही रुको! मैं मन्दिर में जाकर देखता हूं, मेरा मित्र अब तक लौटकर क्यों नहीं आया?''

मित्र मन्दिर में जा पहुंचा। उसने देखा, तो धोबी के लड़के का मस्तक कटा हुआ पड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मित्र अधिक चिन्तित और दुखी हो उठा। वह सोचने लगा, 'यह तो बड़ी बुरी बात हुई। लोग जब इस घटना को सुनेंगे तो यही कहेंगे कि धोबी के लड़के की स्त्री से मेरा अनुचित सम्बन्ध था और मैंने ही उसके पति की हत्या कर दी है। इस समय चारों ओर कितनी बदनामी होगी! इस जीवन से मर जाना ही अच्छा है!'

मित्र की रगों में बिजली दौड़ गई। उसने अपना मस्तक काट डाला।

जब मित्र को भी लौटने में बड़ी देर हुई तो धोबी की स्त्री चिन्तित हो उठी। उसने सोचा, 'चलकर मन्दिर में देखना चाहिए, वे दोनों कहां गए? अब तक लौटकर क्यों नहीं आये?'

धोबी की स्त्री मन्दिर में जा पहुंची। उसने वहां जाकर देखा, तो उसके पति और मित्र दोनों के मस्तक कटे हुए पड़े हैं।

स्त्री दुखी और चिन्तित हो उठी। वह मन-ही-मन सोचने लगी, 'यह तो बड़ा अनर्थ हुआ! लोग जब इस बुरी घटना को सुनेंगे तो यही कहेंगे कि मैं बुरे चाल-चलन की हूं। अपने पति और उसके मित्र की जान मैंने ही ली है। उस समय मेरी कितनी बदनामी होगी! इस जीवन से तो यही अच्छा है, मैं भी अपने प्राण तज दूं।'

धोबी की स्त्री भी अपना मस्तक काटने के लिए उद्यत हो उठी।

पर धोबी की स्त्री अपना मस्तक काटे, इसके पहले ही मां दुर्गा ने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया, कहा, "पुत्री, इसकी आवश्यकता नहीं। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए?"

धोबी की स्त्री ने कहा, "मां, यदि तू मुझ पर प्रसन्न है, तो मेरे स्वामी और उनके मित्र को जीवित कर दो।"

मां दुर्गा ने स्त्री के पति और उसके मित्र को जीवित कर दिया।

तीनों हर्ष से पुलकित होकर मां दुर्गा की प्रशंसा के गीत गाने लगे, बड़े प्रेम और भक्ति-भाव से गाने लगे।

वैताल ने महाराज विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज बताइए, आप धोबी के लड़के, लड़के की पत्नी और लड़के के मित्र—तीनों में से किसे सर्वश्रेष्ठ कहेंगे?"

महाराज विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "लड़के के मित्र को।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैताल ने पुनः प्रश्न किया, ''ऐसा क्यों महाराज! क्या धोबी का लड़का और उसकी पत्नी श्रेष्ठ नहीं हैं?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''हैं, पर सर्वश्रेष्ठ तो मित्र ही है। धोबी के लड़के ने दुर्गा मां को वचन दिया था, उसने अपना बलिदान देकर अपने वचन का पालन किया। वचन पालन करना उसका अपना कर्तव्य था।

''धोबी की स्त्री के बलिदान में भी यही बात थी।

''पर मित्र ने तो अपना बलिदान देकर, एक ऊंचा आदर्श बनाया। उसका बलिदान उसकी ओर नहीं, सबकी ओर देखता है।''

वैताल विक्रमादित्य के विचारों को सुनकर उन पर मोहिन हो उठा, मन-प्राण से मोहित हो उठा।

19

स्वामी और सेवक

प्राचीन काल में मिथिलावती नामक नगर में एक राजा राज्य करता था। राजा का नाम गुणाधिप था। गुणाधिप बड़ा प्रतापी था। उसका नाम देश-विदेश में, चारों ओर फैला हुआ था।

दोपहर का समय था। गुणाधिप राजसभा में सिंहासन पर विराजमान था, राज-काज में संलग्न था। सहसा उसके सामने एक आदमी उपस्थित हुआ। उस आदमी का नाम विरमदेव था। वह एक साहसी और वीर राजपूत था।

विरमदेव ने हाथ जोड़कर राजा से नौकरी के लिए प्रार्थना की। राजा ने उसे नौकरी तो दे दी, पर उससे और कुछ नहीं पूछा।

विरमदेव को नौकरी तो मिल गई पर उसके मन को सन्तुष्टि नहीं हुई, क्योंकि वह राजा से और भी कुछ आवश्यक बातें करना चाहता था।

विरमदेव ने राजा से बातचीत करने का कई बार प्रयत्न किया, पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसे सफलता नहीं मिली।

प्रभात का समय था। राजा वन में आखेट के लिए जा रहा था। उसके साथ सिपाहियों का एक बहुत बड़ा दल था। विरमदेव भी उस दल में जा मिला। उसने सोचा, कदाचित् वन में उसे राजा से बातचीत करने का अवसर मिल जाए!

और विरमदेव का सोंचना सत्य सिद्ध हुआ।

राजा जब वन में पहुंचा तो उसकी दृष्टि एक मृग पर पड़ी। उसने अपना घोड़ा मृग के पीछे दौड़ा दिया।

मृग चौकड़ी भरने लगा—छलांगें मारने लगा। वह चौकड़ी भरता, छलांगें मारता हुआ दूर, बड़ी दूर निकल गया। राजा ने भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। वह मृग के पीछे दूर बड़ी दूर निकल गया, इतनी दूर निकल गया कि उसके सभी संगी-साथी बहुत पीछे छूट गए।

राजा को मृग तो नहीं मिला, वह वन में रास्ता अवश्य भूल गया। वह वन में इधर-उधर भटकने लगा, भूख-प्यास से व्याकुल हो उठा।

राजा ने सोचा, अब उसे इस वन में ही अपने प्राण छोड़ने पड़ेंगे।

इसी समय राजा के कानों में एक विनीत और कोमल वाणी पड़ी, ''महाराज, घबराइए नहीं। मैं आपकी सेवा के लिए मौजूद हूं।''

वह विनीत और कोमल वाणी विरमदेव की थी। विरमदेव ने जब राजा को मृग के पीछे दौड़ाते हुए देखा, तो अपना घोड़ा राजा के घोड़े के पीछे दौड़ा दिया था। वह राजा के पीछे-पीछे लगा हुआ था।

राजा ने विरमदेव की आवाज सुनकर उसकी ओर देखा और बड़े आश्चर्य के साथ कहा, ''तुम!''

विरमदेव ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, ''हां महाराज, मैं आपका सेवक!''

विरमदेव राजा को पेड़ की छाया में ले गया। उसे पानी पिलाकर, खाना खिलाकर संतुष्ट किया।

राजा प्रसन्न हो उठा। उसने विरमदेव की ओर देखते हुए कहा, ''विरमदेव, तुम तो नौकरी में लगे हो, फिर शरीर से दुर्बल क्यों हो?''

विरमदेव ने उत्तर दिया, ''महाराज, जब मनुष्य की कामना पूर्ण नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

होती तो, वह शरीर से दुर्बल हो जाता है।''

राजा ने दूसरा प्रश्न किया, ''क्या तुम्हारी कोई कामना है, जो पूर्ण नहीं हुई?''

विरमदेव ने उत्तर दिया, ''हां महाराज, मेरी एक कामना थी, जो आज तक पूर्ण नहीं हुई थी; पर आज मेरी वह कामना पूर्ण हो गई। अब मैं दुर्बल नही रहूंगा, महाराज!''

राजा आश्चर्यचकित हो उठा। उसने विरमदेव से फिर प्रश्न किया, ''तुम्हारी कामना आज पूर्ण हो गई! आखिर वह कौन-सी कामना थी, जो आज पूर्ण हुई?''

विरमदेव ने जवाब दिया, ''महाराज, मैं आपके प्रताप और यश को सुनकर इस दरबार में उपस्थित हुआ था। नौकरी तो केवल एक बहाना थी। असल में मैं आपसे वार्तालाप करना चाहता था। मैंने अनेक अवसर ढूंढ़े, पर आपसे वार्तालाप करने का अवसर नहीं मिल सका। ईश्वर की कृपा से वह अवसर आज मिला है, महाराज!''

राजा प्रसन्न हो उठा। उसने विरमदेव की ओर देखते हुए कहा, ''अच्छा तो आज मेरे साथ वार्तालाप करके, अपने मन की कामना पूरी कर लो!''

विरमदेव ने राजा की आज्ञा पाकर, उसके साथ विविध विषयों पर बातचीत की।

जब बातचीत खत्म हो गई, तो राजा ने विरमदेव से कहा, ''अब तो तुम्हारी कामना पूर्ण हो चुकी! अब तुम मुझे राजधानी में पहुंचाओ।''

विरमदेव और राजा दोनों अपने-अपने घोड़े पर सवार हुए। आगे-आगे विरमदेव और पीछे-पीछे राजा। विरमदेव ने राजा को राजधानी में सकुशल पहुंचा दिया।

राजा विरमदेव पर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे बहुत-सा धन पुरस्कार में देकर अपनी सेवा में नियुक्त कर लिया।

विरमदेव राजा के पास रहकर उसकी सेवा करने लगा।

धीरे-धीरे कई वर्ष बीत गए।

एक दिन राजा ने विरमदेव को एक विशेष कार्य से एक दूसरे नगर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में भेजा। वह नगर समुद्र के किनारे था।

विरमदेव ने उस नगर में जाकर बड़ी खूबी से राजा के कार्य को पूरा किया, फिर वह समय निकालकर नगर देखने के लिए निकला।

विरमदेव घूमता-घूमता देवी के मन्दिर में पहुंचा। उसने मन्दिर में जाकर बड़े भक्ति-भाव से देवी की पूजा की।

विरमदेव जब मन्दिर के बाहर निकला, तो उसकी दृष्टि एक लड़की पर पड़ी।

लड़की बड़ी सुन्दर थी। विरमदेव ने मन-ही-मन सोचा, काश उस लड़की के साथ उसका विवाह हो जाता!

विरमदेव ने उस लड़की से कहा, ''तुम कौन हो? कहां रहती हो? यदि मैं तुम्हारे साथ विवाह करना चाहूं, तो क्या तुम तैयार हो?''

लड़की ने जवाब दिया, ''क्यों नहीं, पर मेरे साथ विवाह करने के लिए तुम्हें सामने के कुण्ड में नहाना पड़ेगा।''

विरमदेव ने जवाब दिया, ''यह कौन-सी बड़ी बात है! मैं अभी कुण्ड में स्नान किए लेता हूं।''

विरमदेव कपड़े उतारकर कुण्ड में कूद पड़ा। लड़की बड़े जोर से खिलखिला कर हँस पड़ी।

आश्चर्य! विरमदेव जब कुण्ड से बाहर निकला तो देखता है, वह अपने राजा की राजधानी में खड़ा है।

विरमदेव का मन आश्चर्य से भर गया, पर हो क्या सकता था? अब तो वह बहुत दूर, अपने राज्य की राजधानी में था।

विरमदेव राजा की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने इस आश्चर्यजनक घटना की चर्चा राजा से भी की।

राजा का भी मन आश्चर्य से भर गया। उसने विरमदेव से कहा, ''तुम मुझे भी उस मन्दिर में ले चलो, जहां वह विस्मयजनक कुण्ड है।''

विरमदेव राजा को साथ लेकर फिर उस नगर की ओर लौट पड़ा।

कई महीने की यात्रा के बाद विरमदेव राजा के साथ मंदिर में उपस्थित हुआ था। दोनों ने मन्दिर में जाकर बड़े भक्ति-भाव से देवी की पूजा की।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दोनों जब मन्दिर से बाहर निकले, तो फिर वही लड़की दिखाई पड़ी। लड़की राजा को देखते ही उस पर मोहित हो गई। उसने राजा से कहा, ''तुम कौन हो? कहां रहते हो? मैं तुम्हारे साथ विवाह करना चाहती हूं, क्या तुम इसके लिए तैयार हो?''

राजा ने जवाब दिया, ''क्यों नहीं, पर तुम्हें मेरी बात माननी पड़ेगी। जो मैं कहूंगा, वह करना पड़ेगा।''

लड़की ने कहा, ''तुम जो कुछ कहोगे, मैं करूंगी।''

राजा ने कहा, ''तो मेरी आज्ञा है, तुम मेरे सेवक विरमदेव के साथ विवाह करो।''

लड़की ने कहा, ''पर यह कैसे हो सकता है? मैं तो अपना विवाह तुम्हारे साथ क़रना चाहती हूं।''

राजा ने कहा, ''देखो, अच्छे मनुष्य वचन देकर छोड़ते नहीं हैं अभी-अभी तुमने कहा है—मैं जो कहूंगा, तुम उसे करोगी! अगर तुम मुझसे पवित्र प्रेम करती हो, तो तुम्हें मेरी बात मानकर मेरे सेवक के साथ विवाह कर लेना चाहिए।''

लड़की विवश हो उठी! उसने राजा की बात मानकर विरमदेव के साथ विवाह कर लिया।

विरमदेव राजा के चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा, ''महाराज, आप धन्य हैं। संसार में लोग धन और सुन्दर स्त्री के लिए बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ते हैं, पर आपने उसी को बिना किसी मोह के छोड़ दिया! आप मनुष्य नहीं, देवता हैं।''

विरमदेव अपनी पत्नी और राजा के साथ राजधानी लौट गया। राजा ने उसे रहने के लिए महल, भोग के लिए धन और सवारी के लिए हाथी-घोड़े प्रदान किए।

विरमदेव अपने कर्तव्यों का पालन करता हुआ सुख से जीवन व्यतीत करने लगा।

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, ''महाराज, बताइए! विरमदेव और राजा दोनों में किसका त्याग श्रेष्ठ है?''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''विरमदेव का।''

वैताल ने आश्चर्य के साथ कहा, ''ऐसा क्यों, महाराज? राजा ने सुन्दर स्त्री का त्याग किया। क्या उसके त्याग को श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''नहीं, राजा समर्थ था। विरमदेव का स्वामी था। स्वामी का कर्तव्य है, अपने सेवक की इच्छाओं को पूर्ण करे, उसके सुख के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग करे।

''विरमदेव सेवक था—साधारण स्थिति का था! उसने राजा की भलाई, केवल भलाई की दृष्टि से की।''

वैताल मुग्ध हो उठा। उसने कहा, ''महाराज, आप मनुष्य नहीं, देवता हैं।''

20

धर्म-रक्षा

बहुत दिनों पूर्व की बात है।

बदरपुर में एक धनी बनिया रहता था। उसका नाम हिरण्यदत्त था। उसकी एक पुत्री थी। पुत्री का नाम मदनसेना था।

मदनसेना का विवाह पक्का हो गया था, पर अभी विवाहित नहीं हुई थी।

संध्या के पहले का समय था। मदनसेना वाटिका में फूल चुनने गई थी। वहां पहले से ही एक युवक सैर कर रहा था।

युवक का नाम सोमदत्त था। वह भी एक धनी सेठ का पुत्र था।

सोमदत्त मदनसेना को देख करके उस पर मोहित हो गया। उसने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया।

मदनसेना ने झटक कर अपना हाथ छुड़ा लिया, सोमदत्त को डांटते हुए कहा, ''लज्जा नहीं आती! परायी स्त्री का हाथ पकड़ रहे हो।''

सोमदत्त ने मदनसेना की ओर देखते हुए कहा, ''मैं तुम्हारे साथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विवाह करना चाहता हूं, सब-कुछ छोड़कर केवल तुम्हें प्राप्त करना चाहता हूं।''

मदनसेना बोली, ''विवाह कोई हँसी-खेल नहीं! विवाह लड़के-लड़कियां नहीं, माता-पिता निश्चित करते हैं। मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं कर सकती। मैं विवश हूं।''

सोमदत्त बोला, ''अगर तुम मेरे साथ विवाह नहीं करोगी तो मैं अपने प्राण दे दूंगा।''

सोमदत्त अपने हाथों से ही अपना गला काटने के लिए उद्यत हो उठा।

मदनसेना ने सोमदत्त का हाथ पकड़ लिया, कहा, ''आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। आत्महत्या बहुत बड़ा पाप है।'

मदनसेना संकट में पड़ गई, सोचने लगी, 'करूं तो क्या करूं इस बहके हुए युवक को सांत्वना दूं तो किस प्रकार दूं?'

मदनसेना ने सोचते हुए कहा, ''देखो, मेरा विवाह पक्का हो चुका है। मैं तुम्हें वचन देती हूं, विवाह हो जाने पर मैं तुमसे अवश्य मिलूंगी।''

मदनसेना युवक का पता-ठिकाना लेकर अपने घर चली गई। सचमुच पांच-छः दिनों के बाद मदनसेना का विवाह हो गया। वह अपनी ससुराल चली गई। पर ससुराल में मदनसेना बड़ी उदास रहती थी। वह न तो पति से बातचीत करती थी, न उसे अपना शरीर छूने देती थी। वह उससे दूर-दूर रहने का प्रयत्न किया करती थी।

मदनसेना के पति को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने मदनसेना से पूछा, ''मदनसेना, बात क्या है? मेरा तुम्हारे साथ विवाह हो चुका है। तुम मेरी पत्नी हो, फिर क्यों मुझसे दूर-दूर रहती हो? तुम मुझसे बातचीत क्यों नहीं करती?''

मदनसेना ने सच्चे हृदय से अपने पति को सोमदत्त की कहानी सुना दी। उसने कहा, ''जब तक मैं अपने वचन के अनुसार सोमदत्त से एक बार मिल नहीं लूंगी, आपके साथ बातचीत नहीं कर सकती।''

मदनसेना का पति सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते कहा, ''मदनसेना, क्या तुम्हें इस बात की बिलकुल चिन्ता नहीं है कि जब लोग इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहानी को सुनेंगे, तो क्या कहेंगे? यदि तुम सोमदत्त से मिलने के लिए जाओगी, तो तुम्हारी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी। हो सकता है, मैं भी तुम्हें छोड़ दूं।''

मदनसेना ने जवाब दिया, ''मैं जानती हूं, पर प्रश्न है एक बिगड़े हुए युवक के जीवन का। मैं उसे अच्छे रास्ते पर लाना चाहती हूं। मेरी आपसे प्रार्थना है, उसके पास जाने की आज्ञा प्रदान करें।''

मदनसेना के पति ने सोचते हुए उसे सोमदत्त के पास जाने की अनुमति दे दी।

रात का समय था। मदनसेना गहनों-कपड़ों से सज्जित होकर, सोमदत्त के घर की ओर चल पड़ी।

संयोग की बात, रास्ते में एक चोर से भेंट हो गई। चोर गहनों-कपड़ों से सज्जित, अकेली मदनसेना को देखकर प्रसन्न हो उठा। बोला, ''कुशल चाहती हो तो सारे गहने उतार कर रख दो! यदि शोर मचाओगी तो मैं गला घोंटकर सारे गहने छीन लूंगा।''

मदनसेना ने कहा, ''नहीं-नहीं, ऐसा न करो! मैं अपने प्रेमी से मिलने जा रही हूं। यदि बिना गहनों के उसके पास जाऊंगी, तो उसे बड़ा दुख होगा। मैं वचन देती हूं, लौटती बार तुम्हें सारे गहने दे दूंगी।''

चोर ने कहा, ''वाह, मुझे झांसा-पट्टी दे रही हो! क्या विश्वास है कि तुम लौटकर आओगी?''

मदनसेना बोली, ''मैं आर्य स्त्री हूं। आर्य स्त्रियां झूठ नहीं बोलतीं। मेरी बात पर विश्वास करो। मैं लौटूंगी, अवश्य लौटूंगी और अपने सारे गहने तुम्हें दे दूंगी।''

चोर आंखों में आश्चर्य भरकर मदनसेना की ओर देखने लगा। उसने बहुत-सी स्त्रियां देखी थीं, पर मदनसेना-जैसी स्त्री उसने आज पहली बार देखी थी।

चोर ने मदनसेना को छोड़ दिया, कहा, ''तुम जा सकती हो! जब तक न आओगी, मैं यहां बैठकर तुम्हारी राह देखूंगा।''

मदनसेना सोमदत्त के घर की ओर चल पड़ी।

मदनसेना सोमदत्त के घर जा पहुंची। वह अपने घर के बाहर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दरवाजे पर गहरी नींद में सो रहा था। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी, मदनसेना इस तरह अपने वचन की रक्षा करेगी। वह उसे भूल चुका था, उससे मिलने की घटना को भी भूल चुका था।

मदनसेना ने सोमदत्त को जगाया।

सोमदत्त ने जाकर देखा, उसके सामने देवकन्या-सी स्त्री खड़ी है। वह आश्चर्य से भरकर बोल उठा, "मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं! तुम कौन हो, स्वर्ग की अप्सरा या देवबाला, या किन्नरी!"

मदनसेना ने उत्तर दिया, "मैं न तो देवबाला हूं, न स्वर्ग की अप्सरा, और न किन्नरी? मैं हिरण्यदत्त की पुत्री, मदनसेना हूं। क्या तुम्हें याद नहीं है, वाटिका मैं तुमने मेरा हाथ पकड़ लिया था, कहा था, 'यदि मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं करूंगी, तो तुम अपने प्राण दे दोगे!' मैंने उस समय कहा था, 'तुम अपने प्राण न दो, मैं विवाह हो जाने पर तुमसे अवश्य मिलूंगी।' मैं अपना वचन पूरा करने के लिए तुम्हारे पास आई हूं। बोलो, तुम क्या चाहते हो?"

सोमदत्त चकित-विस्मित मदनसेना की ओर देखने लगा।

मदनसेना ने पुनः कहा, "क्या तुम्हें, अब भी विश्वास नहीं हो रहा है, मैं हिरण्यदत्त की पुत्री वही मदनसेना हूं, जिसे तुमने वाटिका में देखा था!"

सोमदत्त ने जवाब दिया, "विश्वास तो हो रहा है, पर इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा है, जिस तरह तुमने अपने वचन का पालन किया है! क्या इस तरह कोई स्त्री अपने वचन का पालन कर सकती है?"

मदनसेना ने कहा, "मैं भी तो एक स्त्री हूं। अब तो तुम्हें इस बात का विश्वास होना ही चाहिए कि, आर्य स्त्रियां अपना सब-कुछ छोड़कर अपने वचन की रक्षा करती हैं।"

सोमदत्त मन-ही-मन सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते कहा, "मदनसेना, क्या तुमने अपने पति को मेरे मिलने की घटना बता दी है? क्या तुम अपने पति से पूछ कर मेरे पास आई हो?"

मदनसेना ने जवाब दिया, "हां, मैंने अपने पति को तुमसे मिलने का घटना बता दी है! मैं उनसे पूछ करके ही तुम्हारे पास आई हूं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सोमदत्त मन-ही-मन सोचने लगा।

सोमदत्त ने सोचते-सोचते कहा, ''मदनसेना, जब मैंने पहली बार तुम्हें देखा था, तो मेरे मन में अवश्य बुराई पैदा हुई थी, पर अब जब मैं तुम्हें दूसरी बार देख रहा हूं, मेरी आंखें खुल गई हैं। मदनसेना, तुम तो देवी हो, पूजने योग्य हो! मुझे क्षमा कर दो, मदनसेना!''

मदनसेना ने कहा, ''मैं तुम्हें क्षमा कर सकती हूं, पर तुम वचन दो, कभी किसी परायी स्त्री को बुरी दृष्टि से नहीं देखोगे।''

सोमदत्त मदनसेना के पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा, ''मदनसेना, तुम्हारी सच्चाई ने मुझे सच्चाई का रास्ता दिखा दिया है। मैं प्रतिज्ञा करता हूं, अब किसी परायी स्त्री के साथ बुरा व्यवहार नहीं करूंगा।''

मदनसेना ने बड़े प्यार से सोमदत्त का हाथ पकड़ कर उसे उठाते हुए कहा, ''तो फिर मेरी बात मानो, विवाह करके आदर्श गृहस्थ का जीवन व्यतीत करो।''

मदनसेना सोमदत्त को ढाढ़स बंधा कर अपने पति के घर की ओर चल पड़ी।

रास्ते में चोर बड़ी व्याकुलता के साथ, मदनसेना की राह देख रहा था।

मदनसेना ने चोर के पास पहुंचकर कहा, ''मैं अपने वचन के अनुसार तुम्हारे पास आ गई हूं। अब तुम बड़ी प्रसन्नता से मेरे गहने उतार सकते हो।''

चोर हक्का-बक्का हो गया। उसका बहुत-से आदमियों से पाला पड़ा था, पर ऐसे आदमी से पाला आज पहली बार पड़ा था, जो अपनेआप उसके पास आ गया हो, और कह रहा हो—'मेरे गहने उतार लो!'

चोर आंखों में आश्चर्य भर कर मदनसेना की ओर देखने लगा। उस ने मदनसेना की ओर देखते हुए विनम्रता से कहा, ''तुम कौन हो? देवी हो या स्वर्ग की अप्सरा हो? तुम अपनेआप चोर से कह रही हो—गहने उतार लो!''

मदनसेना ने जवाब दिया, ''मैं न देवी हूं, न अप्सरा हूं! मैं तो एक मानवी हूं। तुम्हें अवश्य मेरे गहनों की आवश्यकता होगी। आदमी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बिना आवश्यकता के पाप नहीं करता। मैं तुम्हारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही तुम्हें अपने गहने दे रही हूं। आदमी का धर्म है, वह दूसरे आदमी के काम आए।''

चोर के हृदय के तार बज उठे। वह मदनसेना के पैरों पर गिरता हुआ बोला, ''देवी, मुझे क्षमा कर दो। किसमें साहस है, जो तुम्हारे शरीर के गहनों को उतारे!''

मदनसेना ने कहा, ''क्षमा कर सकती हूं, पर एक शर्त पर! तुम प्रतिज्ञा करो, आज से कभी चोरी न करोगे?''

चोर ने कान पकड़ कर प्रतिज्ञा की, ''आज से कभी चोरी न करूंगा।''

मदनसेना अपने पति के घर की ओर चल पड़ी। पति के पास पहुंचकर उसके चरण स्पर्श किए।

मदनसेना का मुखमंडल तेज से उद्दीप्त हो रहा था। उसके तेज के देखकर उसका पति सब-कुछ समझ गया। उसने कहा, ''मदनसेना, तुम्हारे मुख का तेज कह रहा है, तुमने अपने सत्य से उस युवक को सत्य-पथ की राही बना दिया है। तुम धन्य हो मदनसेना! तुम्हारी जैसी स्त्रियां ही संसार में देवी कही जाती हैं।''

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, ''महाराज बताइए, आप मदनसेना, उसके पति और चोर—तीनों में किसे श्रेष्ठ कहेंगे?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''चोर को; क्योंकि उसका त्याग बिना किसी लालच के था।''

वैताल प्रसन्न होकर विक्रमादित्य की प्रशंसा करने लगा।

21

राजा की वीरता

प्राचीन काल में पुण्यपुर में एक राजा राज्य करता था। राजा का नाम वल्लभ और उसके मंत्री का नाम सत्यप्रकाश था। मंत्री की स्त्री का नाम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लक्ष्मी था। लक्ष्मी सचमुच लक्ष्मी थी—रूप में भी, गुणों में भी।

राजा बड़ा विलासी था। वह विलास और सुख-आनन्द को ही सबसे बड़ा धर्म मानता था।

एक दिन राजा ने मंत्री से कहा, ''मंत्री जी, आप राज-काज देखिए! मैं तो सब प्रकार से निश्चिन्त होकर, सुख-आनन्द के साथ जीवन बिताऊंगा।''

मंत्री करता तो क्या करता? वह राजा की आज्ञा शीश पर धारण करके राज-काज देखने लगा।

मंत्री दिन-रात राज-काज में फंसा रहता था। उसे खाने-पीने की भी सुध-बुध नहीं रहती थी। फलतः वह शरीर से बड़ा दुर्बल हो गया। ऐसा लगने लगा, मानो उसे कोई बहुत बड़ा रोग हो गया हो।

एक दिन मंत्री की स्त्री ने उससे पूछा, ''स्वामी, मैं देखाती हूं, आपका शरीर दिनोंदिन दुर्बल होता जा रहा है! आपको कोई रोग तो नहीं लगा है।''

मंत्री ने उत्तर दिया, ''नहीं, मुझे तो कोई रोग नहीं लगा है। बात यह है कि राजा मुझे राज-काज सौंपकर दिन-रात विलास में डूबा रहता है। मुझे राज-काज की सदा चिन्ता लगी रहती है। चिन्ता के ही कारण मेरा शरीर दुर्बल होता जा रहा है।''

लक्ष्मी बोली, ''चिन्ता बड़ी बुरी बला होता है। चलिए, कुछ दिनों के लिए तीर्थों में चलें! तीर्थों में आनन्द प्राप्त होगा, और चिंता भी न रहेगी।''

मंत्री ने अपनी पत्नी की बात मान ली।

मंत्री ने राजा की सेवा में उपस्थित होकर उससे तीर्थ-यात्रा के लिए अनुमति मांगी।

पहले तो राजा ने अस्वीकार कर दिया, पर जब मंत्री ने उसका ध्यान अपने शरीर की दुर्बलता की ओर आकृष्ट किया तो उसने उसे तीर्थ-यात्रा के लिए आज्ञा दे दी।

मंत्री अपनी पत्नी के साथ तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़ा।

मंत्री दक्षिण के तीर्थों में घूमता हुआ समुद्र के किनारे रामेश्वरम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पहुंचा।

दोपहर के पहले का समय था। मंत्री पूजा करने के बाद रामेश्वर के मंदिर से बाहर निकला। सहसा उसकी दृष्टि समुद्र की ओर जा पड़ी। उसने बड़े आश्चर्य के साथ देखा, समुद्र में एक हरा-हरा पेड़ उगा हुआ है। उस पेड़ की डालों में हीरे, पन्ने और मोतियों के फल लगे हुए हैं। वृक्ष की एक डाल पर एक सुन्दर स्त्री बैठी हुई है, सुमधुर स्वरों में वीणा बजा रही है।

मंत्री नेत्रों में आश्चर्य भरकर उस वृक्ष की ओर देखने लगा।

मंत्री को उस समय और आश्चर्य हुआ, जब उसने देखा वृक्ष समुद्र के भीतर समा गया।

मंत्री अपने देश लौट गया। उसने राजा की सेवा में उपस्थित होकर उस अनोखे पेड़ की चर्चा की, जिसे उसने समुद्र में देखा था।

राजा ने सुनकर कहा, ''मंत्री जी, मुझे रामेश्वरम् ले चलिए। हो सकता है, उस पेड़ को देखने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हो जाए।''

मंत्री अस्वीकार कैसे कर सकता था? वह राजा के साथ पुनः रामेश्वरम् गया।

मंत्री और राजा जब पूजा करने के बाद मन्दिर से बाहर निकले, तो समुद्र में फिर वही पेड़ दिखाई पड़ा। मंत्री तो चकित-विस्मित होकर उस पेड़ की ओर देखने लगा, पर राजा समुद्र में कूद पड़ा। वह तैरता हुआ शीघ्र ही उस पेड़ के पास जा पहुंचा और पेड़ की डाल पकड़ कर लटक गया।

पेड़ जब समुद्र के भीतर समाया, तो पेड़ की डाल के साथ ही साथ राजा भी समा गया।

समुद्र के भीतर एक बहुत बड़ा महल था। पेड़ महल के दरवाजे पर खड़ा हुआ। पेड़ की डाल पर बैठी हुई स्त्री नीचे उतरी। उसके साथ ही साथ राजा भी नीचे उतरा।

स्त्री जब महल के भीतर जाने लगी, तो राजा भी उसके पीछे-पीछे महल में चल पड़ा।

स्त्री ने महल के भीतर जाकर राजा से पूछा, ''तुम कौन हो? यहां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किस लिए आये हो?''

राजा ने उत्तर दिया, ''मैं पुण्यपुर का नृपति हूं। मैं तुम्हारे साथ विवाह करने के उद्देश्य से यहां उपस्थित हुआ हूं।''

स्त्री ने उत्तर दिया, ''राजन, आप एक वीर पुरुष हैं। मुझे अनेक मनुष्यों ने देखा, पर आपकी तरह यहां आने का साहस किसी ने नहीं किया। मैं आपके साथ विवाह कर सकती हूं, पर मेरी एक शर्त है।''

राजा ने पूछा, ''क्या शर्त है तुम्हारी?''

स्त्री ने जवाब दिया, ''कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात में आप मुझे अकेली छोड़ देंगे।''

राजा ने स्त्री की शर्त स्वीकार कर ली।

राजा और स्त्री दोनों विवाह-बंधन में बंध गए। दोनों पति-पत्नी के रूप में सुखपूर्वक उस महल में रहने लगे।

कुछ दिनों के पश्चात ही कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात आ पहुंची। स्त्री ने राजा से कहा, ''महाराज, आज की रात चतुर्दशी की रात होगी! आपको याद है न शर्त?''

राजा ने उत्तर दिया, ''हां याद है। आज मैं तुमसे अलग रहूंगा''

राजा ने रात में स्त्री को अकेली छोड़ दिया।

राजा चुपचाप, हाथ में तलवार लेकर, स्त्री के कमरे में छिपकर बैठ गया।

आधी रात बीत गई थी। सहसा एक राक्षस स्त्री के कमरे में प्रविष्ट हुआ। वह स्त्री के पास जाकर उससे प्रेम की बातचीत करने लगा।

राजा हाथ में तलवार संभाल कर खड़ा हो गया। उसने राक्षस को डांटते हुए कहा, ''खबरदार, यह मेरी विवाहिता पत्नी है! तू इसके साथ इस प्रकार प्रेमालाप नहीं कर सकता।''

राक्षस क्रोधित हो उठा। वह उस स्त्री को पूर्ण रूप से अपनी मानता था। वह ताल ठोंककर राजा पर झपट पड़ा, पर वह राजा के पास पहुंचे उसके पहले ही राजा ने तलवार से उसका मस्तक उड़ा दिया।

राक्षस निर्जीव होकर भूमि पर गिर पड़ा। स्त्री और राजा दोनों प्रसन्न हो उठे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा ने स्त्री से पूछा, ''यह राक्षस कौन था? यह तुम्हारे पास चतुर्दशी रात में ही क्यों आता था?''

स्त्री ने उत्तर दिया, ''मैं एक गंधर्व कन्या हूं। मेरा नाम सुन्दरी है। मैं दिन-रात अपने रुग्ण पिता की सेवा में लगी रहती थी। एक दिन किसी कारणवश सेवा में त्रुटि हो गई। बस, उन्होंने शाप दे दिया, 'तुझे राक्षस चतुर्दशी की रात में अपनी प्रियतमा बनायेगा।'

''जब मैं बहुत रोई-गिड़गिड़ाई, तो उन्होंने फिर कहा, 'एक वीर पुरुष आयेगा। वह उस राक्षस से तुझे मुक्ति दिलायेगा।'

''महाराज, पिता के शाप के ही कारण राक्षस प्रति कृष्णपक्ष की रात में मेरे पास आया करता था। पिता के वरदान के ही कारण आप मुझे प्राप्त हुए हैं।''

राजा के हृदय में हर्ष का सागर उमड़ उठा। यह जानकर कि उसकी स्त्री गंधर्वपुत्री है, राजा बहुत ही हर्षित हुआ।

राजा कुछ दिनों तक उसी महल में रहा। इसके बाद वह अपनी पत्नी के साथ अपनी राजधानी में गया।

राजा के अभाव में राजधानी में सन्नाटा छाया हुआ था। मंत्री, सेनापति, कर्मचारी, प्रजा आदि सभी बहुत दुखी थे। राजा को पाकर सबके हृदय में हर्ष का सागर उमड़ने लगा। सब दान-पुण्य और यज्ञ-याग करने लगे। स्वयं राजा ने भी बहुत अधिक दान-पुण्य किया, यज्ञ-याग किया।

राजा अपनी पत्नी के पास सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

कई वर्ष बीत गए। एक दिन राजा की पत्नी ने कहा, ''महाराज, मुझे अपने पिता को देखे हुए बहुत दिन हो गए। यदि आपकी आज्ञा हो तो, मैं गंधर्व-लोक में जाकर अपने पिता के दर्शन करूं।''

राजा ने अपनी पत्नी को गंधर्व-लोक में जाने की अनुमति दे दी।

पर राजा की पत्नी गंधर्व-लोक नहीं गई। उसके विचार बदल गए। उसने कहा, ''महाराज, अब मैं कहीं नहीं जाऊंगी। अब मैं सदा आपके पास रहूंगी।''

राजा के मन में आश्चर्य पैदा हो उठा। उसने आश्चर्य के साथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहा, ''आश्चर्य है! अभी तो तुम मुझसे गंधर्व-लोक में जाकर अपने पिता को देखने के लिए अनुमति मांग रही थी; पर जब मैंने जाने की अनुमति दे दी, तो तुम कह रही हो, अब नहीं जाऊंगी!''

राजा की पत्नी ने उत्तर दिया, ''हां महाराज, पहले मेरा विचार गंधर्व-लोक जाने का था, पर अब नहीं है। महाराज, मैं गन्धर्व-कन्या हूं। मैं गंधर्व-लोक जाऊंगी, तो हो सकता है मेरा विचार पृथ्वी पर लौटने का न रहे! महाराज, गंधर्व-लोक में मुझे सब-कुछ मिल जायेगा, पर आप जैसा वीर और साहसी पुरुष नहीं मिलेगा। मैं गंधर्व-लोक को छोड़ सकती हूं, महाराज! पर मुझसे आपको न छोड़ा जा सकेगा—नहीं छोड़ा जा सकेगा।''

पत्नी राजा के चरणों में गिर पड़ी।

राजा ने अपनी पत्नी को बड़े प्रेम से उठाया, उसने अपने हृदय से लगा लिया। राजा इतना प्रसन्न हुआ—इतना प्रसन्न हुआ, मानो पत्नी के रूप में उसे स्वर्ग मिल गया हो।

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, ''**महाराज**, बताइए आप राजा और मंत्री—दोनों में से किसे श्रेष्ठ कहेंगे?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''मंत्री को; क्योंकि उसने अपने कर्तव्य-पालन में बड़े-बड़े कष्ट उठाए थे।''

वैताल प्रसन्न हो उठा—हर्ष-विभोर हो उठा।

22

चोर की पत्नी

प्राचीन काल में चन्द्रपुर नामक एक नगर था। उस नगर में एक राजा राज्य करता था। राजा का नाम वीरवर था। वीरवर बड़ा प्रतापी था। उसका नाम और यश दूर-दूर तक फैला हुआ था।

चन्द्रपुर धनी नगर था। बड़े-बड़े सेठ-साहूकार रहते थे। उन्हीं सेठों में एक का नाम धर्मदास था। धर्मदास के पास बहुत ज्यादा धन था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह सेठों का मुखिया कहा जाता था।

धर्मदास की एक पुत्री थी। पुत्री का नाम शोभनी था। वह विवाह के योग्य हो गई थी।

भगवान की इच्छा! चन्द्रपुर में, रात में बड़ी-बड़ी चोरियां होने लगीं।

नगर के लोगों ने चोरियों को बंद करने के लिए बड़े-बड़े उपाय किए, पर चोरियां बंद न हुईं।

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, चोरियां बढ़ने लगीं। नगर के लोग चोरियों से तंग आ गए। आखिर नगर के बड़े-बड़े सेठ राजा की सेवा में उपस्थित हुए।

सेठों ने राजा से निवेदन किया, ''महाराज, नगर में चारों ओर चोरों का उपद्रव बढ़ा हुआ है। हम रोज-रोज की चोरियों से तंग आ गए हैं। यदि इन चोरों को रोका नहीं गया तो हम नगर को छोड़ देंगे, कहीं और चले जायेंगे।''

राजा ने सेठों को ढाढ़स बंधाया, ''नहीं, नहीं, आप लोग इस तरह की बात न सोचें; हम नगर में कड़े पहरे का प्रबन्ध कर देंगे! चोरियां अब न होंगी।''

राजा ने चारों ओर कड़े पहरे का प्रबन्ध कर दिया। रात में चारों ओर सिपाही गश्त देने लगे; पर आश्चर्य, फिर भी चोरियां बन्द नहीं हुईं, पहले की भांति ही होती रहीं।

नगर के बड़े-बड़े सेठ पुनः राजा की सेवा में उपस्थित हुए, विनयपूर्वक बोले, ''महाराज, आपने चारों ओर कड़े पहरे बिठा दिए हैं; पर फिर भी चोरियां बन्द नहीं हो रही हैं। जिस तरह पहले चोरियां हो रही थीं, उसी तरह अब भी हो रही हैं।''

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सेठों को ढांढ़स बंधाते हुए कहा, ''आप लोग बिलकुल भयभीत न हों! अब मैं स्वयं रात में पहरा दूंगा।''

रात का समय था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। राजा वेश बदल कर, ढाल-तलवार लेकर पहरा देने के लिए निकल पड़ा।

राजा नगर में इधर-उधर सावधानी से घूमने लगा। सहसा राजा को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक आदमी दिखाई पड़ा। उस आदमी ने राजा को देखा। उसने राजा से प्रश्न किया, ''तुम कौन हो? रात में दबे-पांव क्यों इधर-उधर घूम रहे हो?''

राजा ने उत्तर दिया, ''भाई मैं चोर हूं। चोरी करने के लिए निकला हूं।''

वह आदमी प्रसन्न हो उठा, बोला, ''चलो, अच्छी बात हुई! हम दोनों की भेंट हो गई। तुम चोर, मैं भी चोर! चलो, अब अपना चमत्कार दिखाएं।''

राजा मन-ही-मन प्रसन्न हो उठा। वह चोर के पीछे-पीछे चल पड़ा।

चोर राजा के साथ कई महलों में घुसा, बड़ी चालाकी से बहुत-सा धन और माल-असबाब उड़ा ले गया।

चोर सारा धन और माल-असबाब लेकर एक पुराने कुएं पर उपस्थित हुआ। वह कुएं से नीचे उतर पड़ा। उसके साथ-ही-साथ राजा भी उतर पड़ा।

कुएं में एक सुरंग थी, जो पातालपुरी जाती थी। चोर सारा धन और माल-असबाब लेकर पातालपुरी जा पहुंचा। राजा भी उसके पीछे-पीछे पातालपुरी जा पहुंचा।

पातालपुरी में एक बहुत बड़ा महल था। चोर उसी महल में रहता था। वह प्रतिदिन रात में निकलता था, राजा के नगर में जाकर चोरी किया करता था।

चोर राजा को अपने महल के दरवाजे पर खड़ा करके स्वयं भीतर चला गया; राजा से कह गया, वह बाहर खड़ा रहे। कुछ देर बार वह आयेगा, उसका प्रबन्ध करेगा।

संयोग की बात, महल के भीतर से एक स्त्री निकली। वह चोर की दासी थी। वह राजा के नगर की ही रहने वाली थी। चोर उसे उड़ा लाया था।

दासी राजा को देखते ही पहचान गई, बोली, ''महाराज, आप यहां कहां? यह तो राक्षसों की नगरी है। चोर बहुत बड़ा राक्षस है। वह अभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आयेगा, आपको मार डालेगा। आप शीघ्र-से-शीघ्र यहां से चले जाइए।''

राजा ने उत्तर दिया, ''पर जाऊं तो किस रास्ते से जाऊं? मुझे रास्ता तो मालूम ही नहीं है।''

दासी ने राजा को रास्ता बता दिया।

राजा पातालपुरी से अपने नगर में पहुंचा।

राजा बड़ा वीर था। उसे अब पता चल गया था, कौन है जो प्रतिदिन रात में उसके नगर में चोरी करता है, उसकी प्रजा को लूटता है।

राजा चोर को पकड़ने और उसे दण्ड देने के लिए व्यग्र हो उठा।

राजा सैनिकों के एक दल के साथ कुएं की सुरंग के रास्ते से फिर पातालपुरी जा पहुंचा। उसने चोर के महल को चारों ओर से घेर लिया।

पर चोर गुप्त मार्ग से निकल गया, पातालपुरी के राजा की सेवा में उपस्थित हुआ। वह एक बहुत बड़ा दैत्य था।

चोर ने अपने राजा से निवेदन किया, ''महाराज, मुझे बचाइए! चन्द्रपुर के राजा ने अपने सैनिकों के साथ मेरा महल घेर लिया है।''

दैत्य क्रुद्ध हो उठा, बोला, ''अच्छा, राजा की यह मजाल! मैं अभी उसे धूल में मिलाए दे रहा हूं।''

दैत्य अपने दल के साथ राजा पर टूट पड़ा। युद्ध होने लगा, बड़े जोरों से युद्ध होने लगा। दोनों ओर से सैनिक कट-कट कर गिरने लगे। दैत्य ने राजा को बंदी बनाने के लिए बड़ा छल-बल किया, पर वह सफल नहीं हुआ। वह स्वयं राजा के हाथों मारा गया।

राजा ने चोर को गिरफ्तार कर लिया।

राजा चोर को साथ में लेकर अपने नगर में पहुंचा। नगर की जनता ने राजा की जय-जयकार की, उसकी वीरता पर मुग्ध होकर उस पर फूलों की वर्षा की।

राजा ने अपने सिपाहियों को आज्ञा दी, ''चोर को अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाकर, उसे ऊंट पर बिठाकर नगर में चारों ओर घुमाओ।''

राजा की आज्ञा का पालन किया गया। चोर को ऊंट की पीठ पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बिठाकर, नगर में चारों ओर घुमाया जाने लगा। ऊंट के आगे-आगे एक आदमी चल रहा था, जो डुग्गी पीट-पीटकर कहता जा रहा था, ''यही वह चोर है, जो नगर में चोरियां किया करता था, चालाकी से लोगों के घरों में घुस-घुसकर उन्हें लूटा करता था।''

ऊंट जिस ओर से निकलता था, डुग्गी की आवाज सुनकर, लोग चोर को देखने के लिए अपने-अपने घरों से निकल पड़ते थे। कोई चोर को देखकर उसे कोसता, कोई गालियां देता, और कोई उसके लिए दुःशाप निकालता था।

पर जब धर्मदास सेठ की पुत्री, शोभनी ने चोर को देखा, तो वह उस पर मोहित हो गई। उसके मन में विचार पैदा हुआ, 'काश, इसके साथ मेरा विवाह हो सकता!'

चोर था तो चोर, पर देखने में बड़ा सुन्दर था, बड़ा स्वस्थ था। लगता था, मानो कोई सत्कुल-पुरुष हो।

शोभनी ने चोर को देखकर, अपने पिता से निवेदन किया, ''पिताजी, आप इस चोर को छुड़ा लीजिए।''

धर्मदास ने उत्तर दिया, ''तुम यह क्या कह रही हो? भला राजा, इस चोर को क्यों छोड़ने लगा? इसने नगर को लूटा है, राजा के सैनिकों पर हमला किया है! राजा इसे अवश्य सूली पर चढ़ायेगा!''

धर्मदास की पुत्री की आंखों में आंसू आ गए। उसने आंसू की बूंदें गिराते हुए कहा, ''पिताजी, यदि इस चोर को फांसी हुई, तो मैं भी जीवित नहीं रहूंगी। राजा चाहे जितना भी धन ले, देकर इसे छुड़ा लीजिए।''

धर्मदास विवश हो उठा। उसकी एक ही बेटी थी। वह राजा की सेवा में उपस्थित हुआ, विनयपूर्वक बोला, ''महाराज, आप चोर को छोड़ दें! आप जितना भी धन चाहें, मैं आपको दे सकता हूं, पर मेरी प्रार्थना है, आप चोर को फांसी न दें। उसे मुक्त कर दें।''

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने धर्मदास की ओर देखते हुए बड़े आश्चर्य के साथ कहा, ''धर्मदास, तुम यह क्या कह रहे हो? जिस चोर ने हमारे नगर को लूटा है, हमारी प्रजा को दुख दिया है, तुम उसे छोड़ देने के लिए कह रहे हो! यदि मैं उसे छोड़ दूं, तो मेरी प्रजा मुझे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

क्या कहेगी! मैं कदापि-कदापि चोर को नहीं छोड़ सकता।''

धर्मदास करता तो क्या करता? वह निराश होकर अपने घर लौट गया, पर उसकी बेटी निराश नहीं हुई। उसने कहा, ''मैं चोर को अपना पति मान चुकी हूं। यदि राजा उसे सूली पर चढ़ायेगा, तो मैं भी अपने कर्तव्य-पालन से बाज नहीं आऊंगी। मैं उसके साथ सती हो जाऊंगी।''

धर्मदास ने अपनी पुत्री को बहुत समझाया पर उसने एक न सुनी। वह अपने विचार पर अड़ी रही, दृढ़ता से अड़ी रही।

किसी तरह चोर को भी यह बात मालूम हो गई कि धर्मदास सेठ की पुत्री शोभनी उस पर मोहित है वह उससे विवाह करना चाहती है। उसने उसे छुड़ाने के लिए प्रयत्न भी किए, पर वह सफल नहीं हो सकी।

उधर राजा ने चोर को नगर में चारों ओर घुमाये जाने के बाद फांसी पर लटकाने की आज्ञा दे दी।

चोर वध-स्थान पर ले जाया गया। उसे फांसी के तख्ते पर चढ़ाया गया। वह फांसी के तख्ते पर चढ़कर एक बार जोर से हँसा, फिर रोया। इसके बाद डोरी खींच ली गई। चोर की जीवन-लीला समाप्त हो गई।

धर्मदास की पुत्री ने राजा से विनती-प्रार्थना करके चोर की लाश प्राप्त कर ली। वह चिता सजाकर उसकी लाश के साथ चिता पर जा पहुंची। किंतु चिता से अग्नि की लपटें उठने के स्थान पर, मां दुर्गा प्रकट हुईं। उन्होंने शोभनी का हाथ पकड़ कर उसे चिता पर से उठाते हुए कह, ''बेटी, मैं तुम्हारे प्रेम पर प्रसन्न हूं। तुम क्या चाहती हो?''

शोभनी ने साश्रु-नयन उत्तर दिया, ''मां, मैं कुछ नहीं चाहती। केवल अपने पति को चाहती हूं''

मां दुर्गा ने चोर को जीवित कर दिया।

धर्मदास ने बड़े ठाट-बाट के साथ चोर के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

चोर फिर लौटकर पातालपुरी नहीं गया। वह बुरे कामों को छोड़कर श्रेष्ठ जीवन बिताने लगा।

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, ''महाराज, बताइए, फांसी के तख्ते पर चढ़ने पर चोर पहले हँसा क्यों था?''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विंक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''चोर ने जब यह सुना कि धर्मदास की पुत्री एक ऐसे आदमी से प्रेम करती है जो सूली पर चढ़ रहा है, तो उसे उसकी मूर्खता पर बड़ी हँसी आई। उसने सोचा, धर्मदास की लड़की कितनी नादान है! वह नहीं समझ रही है कि मैं उसके प्रेम या उसके उपकार का कोई मूल्य नहीं चुका सकता।''

वैताल ने दूसरा प्रश्न किया, ''अब यह बताइए, महाराज! चोर रोया क्यों था?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''चोर यह सोचकर बड़ा दुखी हुआ कि धर्मदास की पुत्री एक ऐसे आदमी से प्रेम करती है, जो बड़ा घृणित है। घृणित आदमी से प्रेम करने के कारण भगवान न जाने उसे कैसा दण्ड देंगे?''

महाराज विक्रमादित्य के विचारों को सुनकर वैताल प्रसन्न हो उठा। उसने कहा, ''महाराज, आपके विचारों में जो ज्ञान है, जो न्याय है, उसकी प्रशंसा मनुष्य ही नहीं, देवता भी करेंगे।''

सचमुच महाराज विक्रमादित्य के न्याय और ज्ञान की प्रशंसा देवता भी किया करते थे।

कई हजार वर्ष बीत गए हैं, पर महाराज विक्रमादित्य के ज्ञान और न्याय की कहानियां आज भी जनता में बड़े चाव से कही और सुनी जाती हैं।

युग पर युग बीतेंगे, पर महाराज विक्रमादित्य के न्याय और ज्ञान की कहानियां इसी प्रकार कही-सुनी जाती रहेंगी—सदा-सदा कही-सुनी जाती रहेंगी।

23

धर्मव्रती राजा

चन्द्रनगर में एक धनी सेठ रहता था। सेठ का नाम रत्नदत्त था। रत्नदत्त की एक पुत्री थी। पुत्री का नाम उन्मादिनी था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उन्मादिनी बड़ी सुलक्षणा, बड़ी गुणवती और बड़ी सुन्दर थी। रूप और गुणों में उसके समान कोई देव-कन्या भी नहीं हो सकती थी।

उन्मादिनी जब बड़ी हुई, तो सेठ को उसके विवाह की चिन्ता हुई।

सेठ ने सोचा, उन्मादिनी जैसी सुलक्षणा, गुणवती और सुन्दर पुत्री के लिए योग्य वर मिलना बहुत कठिन है! उसके लिए योग्य वर तो राजा ही हो सकता है। अतः उसका विवाह राजा के साथ ही करना चाहिए।

रत्नदत्त राजा की सेवा में उपस्थित हुआ, हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराज, मेरी एक कन्या है, उन्मादिनी। वह बड़ी रूपवती, सुलक्षणा और गुणवती है। यदि आप उसके साथ अपना विवाह करें, तो आपके राजमहल की शोभा बन सकती है।"

राजा ने उत्तर दिया, "मैं विवाह कर सकता हूं, पर पहले उसके गुणों और रूप-सौन्दर्य की जांच-पड़ताल करूंगा।"

सेठ ने राजा की बात मान ली।

राजा ने अपनी दो-तीन चतुर दासियों को बुलाकर कहा, "सेठ रत्नदत्त के घर जाकर, उसकी लड़की को देखकर पता लगाओ, क्या वह सचमुच सुन्दरी और गुणवती है!"

राजा की दासियों ने रत्नदत्त के घर जाकर जब उन्मादिनी को देखा तो वे उन्होंने उसके रूप और गुण को देखकर सन्नाटे में आ गई। वह रूप और गुण में सचमुच अद्वितीय थी। ऐसा लग रहा था, मानो वह देवकन्या हो।

पर उन्मादिनी को देखकर दासियों के मन में एक दूसरा विचार पैदा हुआ। सोचा, यदि उन्मादिनी से राजा का विवाह होगा, तो उसका मन उसके रूप-जाल में उलझ जायेगा। वह यथोचित रूप से अपने कर्तव्य का पालन नहीं करेगा।

अतः दासियों ने राजा से से झूठ बोलने का निश्चय किया।

दासियां जब लौटकर राजा के पास गईं, तो उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, उन्मादिनी में न रूप है, न गुण है। वह तो एक फूहड़ लड़की है। वह आपके योग्य बिलकुल नहीं है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

फलतः राजा ने उन्मादिनी के साथ विवाह करने से अस्वीकार कर दिया।

सेठ करता तो क्या करता? उसने अपनी लड़की के लिए एक दूसरा वर खोजा।

वह दूसरा वर राजा का सेनापति था। उसका नाम बलभद्र था।

उन्मादिनी और बलभद्र दोनों का विवाह हो गया। वह बलभद्र के घर जाकर रहने लगी।

कुछ महीने बीत गए। एक दिन संध्या के पहले का समय था। राजा घोड़े पर सवार होकर बलभद्र के घर के सामने से निकल रहा था। हठात उसकी दृष्टि बलभद्र के दरवाजे की ओर जा पड़ी। उसने देखा, चन्द्रमा की ज्योति-सी एक सुन्दर स्त्री घर के भीतर से बाहर निकलकर दरवाजे पर खड़े भिक्षुक को भिक्षा दे रही है।

वह स्त्री बलभद्र की पत्नी—उन्मादिनी थी।

राजा ने उन्मादिनी को देखकर मन-ही-मन सोचा, 'काश वह स्त्री उसके महल की शोभा बनी होती!'

राजा ने अपने राजभवन में लौटकर, मंत्री से उस स्त्री के रूप-सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की, कहा, ''बलभद्र बड़ा सौभाग्यशाली है। उसकी सुन्दर पत्नी के कारण, उसका जीवन धन्य हो गया है।''

मंत्री ने निवेदन किया, ''महाराज, बलभद्र की पत्नी तो सेठ रत्नदत्त की वही पुत्री है, जिसका विवाह वह आपके साथ करना चाहता था।''

राजा ने बड़े ही आश्चर्य के साथ कहा, ''बलभद्र की पत्नी सेठ रत्नदत्त की पुत्री है! पर मेरी दासियों ने तो यह कहा था कि सेठ रत्नदत्त की लड़की एक फूहड़ लड़की है। उसमें रूप-गुण बिलकुल नहीं है।''

राजा ने शीघ्र ही दासियों को उपस्थित होने की आज्ञा दी।

दासियां जब राजा के सामने उपस्थित हुईं, तो राजा ने उनकी ओर तीव्र दृष्टि से देखते हुए प्रश्न किया, ''तुम सब ने कहा था, रत्नदत्त की लड़की एक फूहड़ लड़की है। उसमें रूप-गुण बिलकुल नहीं है, पर उसका रूप तो चन्द्रमा को भी लज्जित करने वाला है। मैंने स्वयं उसे अपनी आंखों से देखा है।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दासियां भय से कांपने लगीं।

राजा ने पुनः कहा, ''तुम सबने मुझसे असत्य क्यों कहा? उस असत्य बोलने के अपराध के लिए, क्या तुम्हें दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए?''

दासियों ने कांपती आवाज में निवेदन किया, ''महाराज, हम अपराधी हैं पर हमारे असत्य बोलने का एक बहुत बड़ा कारण था।''

राजा ने पूछा, ''कौन-सा कारण था?''

दासियों ने निवेदन किया, ''महाराज, सेठ रत्नदत्त की लड़की के अनुपम रूप ओर गुणों को देखकर हमने सोचा, यदि उसके साथ आपका विवाह हुआ तो आप उसके रूप-जाल में फंस जायेंगे, आप अपने कर्तव्य का पालन उचित रूप में नहीं कर सकेंगे। महाराज, हमारे असत्य बोलने का कारण केवल प्रजा की भलाई है।''

राजा बुद्धिमान और न्यायी थी। उसने दासियों को छोड़ दिया, पर उसके मन में इस बात का बहुत बड़ा दुख समा गया कि वह उन्मादिनी-जैसी सुन्दर और गुणवती लड़की को पत्नी के रूप में न पा सका।

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, राजा के मन का दुःख बढ़ने लगा। राजा के मन का दुख इतना बढ़ा कि वह बीमार पड़ गया, उसका खाना-पीना छूट गया।

राजा की प्रत्येक प्रकार की चिकित्सा की गई, पर वह अच्छा नहीं हुआ। उसका शरीर धीरे-धीरे घुलने लगा, और भी अधिक घुलने लगा।

आखिर, राजा की बीमारी के असली कारण का पता मंत्री और सेनापति को चला। मंत्री तो मौन रह गया, पर सेनापति ने अपना कर्तव्य खोज लिया। उसने राजा के पास जाकर निवेदन किया, ''महाराज, आप हमारे देश के प्रतापी और न्यायी राजा हैं। यदि आप शरीर छोड़ देंगे तो देश अनाथ हो जाएगा।

''महाराज, मेरे लिए यह बड़े दुख और लज्जा की बात है कि, आप मेरी पत्नी के कारण बहुत दुःख पा रहे हैं। महाराज, मेरी पत्नी आपकी पत्नी है। मैं उसे सहर्ष आपके हाथों में देने को तैयार हूं।''

राजा ने उत्तर दिया, ''बलभद्र, तुम यह क्या कह रहे हो! तुम्हारी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पत्नी के लिए मेरे मन में कामना अवश्य है, पर अब तो वह परायी है। परायी स्त्री को अपनी बनाना पाप ही नहीं, बहुत बड़ा पाप है।''

बलभद्र ने पुनः निवेदन किया, ''महाराज, मैं आपका सेवक हूं। सेवक का धर्म है, वह अपने स्वामी की रक्षा करे। यदि स्वामी की रक्षा के लिए मान-मर्यादा भी छोड़नी पड़े तो बिना किसी संकोच के छोड़ देनी चाहिए।''

राजा ने उत्तर दिया, ''बलभद्र, तुम सेवक हो, तो मैं स्वामी हूं। यदि सेवक का धर्म है स्वामी की रक्षा करना, तो स्वामी का भी तो यह धर्म है कि वह अपने सेवक का पालन करे, उसका हरेक प्रकार से संरक्षण करे।''

बलभद्र ने राजा से बार-बार अनुनय-विनय की, बार-बार आग्रह-अनुरोध किया, पर राजा ने उसकी पत्नी-दान को स्वीकार नहीं किया— स्वीकार नहीं किया।

राजा ने अपना शरीर छोड़ दिया, पर धर्मव्रत नहीं छोड़ा। धर्मव्रत को न छोड़ने के कारण वह अमर हो गया— सदा के लिए अमर हो गया।

वैताल ने पूरी कहानी विक्रमादित्य को सुनाकर प्रश्न किया, ''महाराज, बताइए, राजा और सेनापति— दोनों में कौन श्रेष्ठ है?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''राजा; जो शक्ति और सामर्थ्य रहते हुए भी अधर्म नहीं करता, वही श्रेष्ठ होता है।''

वैताल प्रसन्न होकर विक्रमादित्य की बुद्धि की प्रशंसा करने लगा— बहुत-बहुत प्रशंसा करने लगा।

24

प्राणदान

हिमालय पर्वत के आस-पास गंधर्वों का एक नगर था।

गंधर्वों के उस नगर में जीमूतकेतु नाम का राजा राज्य करता था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसकी कोई सन्तान नहीं थी। वह बिना सन्तान के बहुत दुखी रहा करता था।

जीमूतकेतु सन्तान-प्राप्ति के लिए कल्पवृक्ष की पूजा करने लगा। उसकी पूजा-आराधना से कल्पवृक्ष प्रसन्न हुआ। कल्पवृक्ष की प्रसन्नता के फलस्वरूप जीमूतकेतु को एक पुत्र प्राप्त हुआ।

जीमूतकेतु ने अपने पुत्र का नाम जीमूतवाहन रखा।

जीमूतवाहन धीरे-धीरे बड़ा हुआ, पढ़-लिखकर विद्वान बना। वह बड़ा चरित्रनिष्ठ, धर्मात्मा और परोपकारी था।

जीमूतवाहन जब बड़ा हुआ तो वह भी कल्पवृक्ष की पूजा-आराधना करने लगा। उसकी भी पूजा-आराधना से कल्पवृक्ष प्रसन्न हुआ। कल्पवृक्ष ने प्रसन्न होकर कहा, ''जीमूतवाहन, मैं तुम्हारी पूजा-आराधना से बड़ा प्रसन्न हूं। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए।''

जीमूतवाहन ने उत्तर दिया, ''देव, ऐसी कृपा कीजिए, जिससे मेरे राज्य में कोई दुखी और दरिद्र न रहे।''

कल्पवृक्ष ने कहा, ''ऐसा ही होगा, जीमूतवाहन! तुम्हारे राज्य में कोई दीन, दुखी और दरिद्र न रहेगा।''

कल्पवृक्ष का वरदान पूरा हुआ। जीमूतवाहन के राज्य में कोई दरिद्र और दुखी नहीं रह गया। सबका घर धन-धान्य से भर गया। सब बड़े सुख और आराम से जीवन बिताने लगे।

पर इसका एक बड़ा बुरा फल भी हुआ। सब आलसी हो गए। सबने काम-काज करना बंद कर दिया। किसी को किसी का डर नहीं रह गया। सब मनमानी करने लगे।

जीमूतवाहन की प्रजा के आलस्य को देखकर उसके शत्रुओं में मुंह में पानी आ गया। उन्होंने सोचा, 'क्यों न जीमूतकेतु के राज्य पर आक्रमण करके, उस पर अपना अधिकार कर लिया जाए?'

बस फिर क्या था? शत्रुओं ने बहुत बड़ी सेना के साथ चढ़ाई कर दी।

जीमूतवाहन शत्रुओं का मुकाबला करने के लिए उद्यत हुआ, पर उसके पिता ने उसे समझाया, ''बेटा, संसार में जो-कुछ है, सब नाश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हो जाने वाला है। जो नाश हो जाने वाला है उसके लिए लड़ना, खून बहाना व्यर्थ है। यदि शत्रुओं की इच्छा राज्य लेने की है, तो प्रसन्नतापूर्वक राज्य को छोड़ दो चलो। हम दोनों वन में रहेंगे।''

पिता-पुत्र दोनों अपना राज्य छोड़कर मलयगिरि पर चले गए, तपस्वियों का सा जीवन व्यतीत करने लगे।

मलयगिरि पर एक ऋषि रहते थे। उनका भी एक पुत्र था। जीमूतवाहन की उसके साथ मित्रता हो गई। दोनों साथ ही साथ रहते थे, साथ ही साथ सैर-सपाटे भी किया करते थे।

प्रभात के बाद का समय था। जीमूतवाहन अपने मित्र के साथ मलय पर्वत पर घूम रहा था। सहसा उसकी दृष्टि भवानी के मन्दिर की ओर गई। उसने देखा, मन्दिर में बैठकर एक युवती लड़की वीणा बजा रही है।

जीमूतवाहन धीरे-धीरे चलकर मन्दिर के द्वार पर जा पहुंचा। उसने लड़की को देखा। लड़की परम सुन्दर थी। उसके अंग-अंग में सुन्दरता की ज्योति-सी निकल रही थी।

लड़की ने भी जीमूतवाहन को देखा। दोनों एक-दूसरे की ओर आकर्षित हो गए, मन-ही-मन एक-दूसरे को पाने की कामना करने लगे।

पर दोनों में से किसी ने भी किसी से कुछ भी नहीं कहा। दोनों एक-दूसरे को अपने हृदय में रखकर अपने-अपने घर चले गए।

दोनों एक-दूसरे से मिलने के लिए प्रतिदिन भवानी के मंदिर में जाने लगे। दोनों को एक-दूसरे का परिचय प्राप्त हुआ। जीमूतवाहन को मालूम हुआ, लड़की राजा मलयकेतु की पुत्री है। लड़की को मालूम हुआ, युवक राजा जीमूतकेतु का पुत्र है।

दोनों एक-दूसरे का परिचय पाकर प्रसन्न हुए।

दोनों की प्रेम-कथा आगे बढ़कर उनके कुटुम्बियों के भी कानों में पड़ी।

कुटुम्बियों ने आपस में बातचीत करके दोनों का गंधर्व विवाह कर दिया। दोनों एक-दूसरे को पाकर प्रसन्न हो गए, गुरुजनों की सेवा करते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हुए, सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

जीमूतवाहन विवाह-सूत्र में बंधने पर भी सदा धर्म और परोपकार के कामों में लगा रहता था। वह जब और जहां किसी दीन-दुखी को देखता था, उसकी सहायता करने के लिए तैयार हो जाता था। दीन-दुखियों की सहायता करने में उसे स्वयं अपनी भी सुध-बुध नहीं रहती थी।

संध्या के पहले का समय था। जीमूतवाहन अपने साले मित्रवसु के साथ मलयगिरि पर सैर कर रहा था। सहसा उसकी दृष्टि एक ढूह पर पड़ी, जो सफेद रंग का था।

जीमूतवाहन ने उस ढूह की ओर देखते हुए मित्रवसु से प्रश्न किया, ''मित्रवसु, सामने जो सफेद रंग का ढूह दिखाई पड़ रहा है, वह क्या है?''

मित्रवसु ने उत्तर दिया, ''वह नागों की हड्डियों का ढेर है। प्रतिदिन सहस्रों नाग यहां एकत्रित होते हैं। गरुड़ उन नागों को खा जाता है। यह ढूह उन्हीं की हड्डियों से बना है।''

जीमूतवाहन के मन में दुख पैदा हो उठा। वह सोचने लगा, गरुड़ उन नागों को क्यों खाता है, क्यों? यह तो पाप है, बहुत बड़ा पाप है!

जीमूतवाहन मन-ही-मन सोचने लगा, विचार करने लगा।

जीमूतवाहन ने सोचते-सोचते कहा, ''मित्रवसु, तुम घर चलो। मैं मन्दिर में पूजा करने जा रहा हूं।''

जीमूतवाहन मन्दिर की ओर चल पड़ा।

सहसा जीमूतवाहन के कानों में किसी के रोने की आवाज पड़ी। वह उस आवाज के सहारे धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। उसने कुछ दूर जाकर देखा—एक वृद्धा स्त्री है, जो सकरुण स्वर में विलाप कर रही है।

जीमूतवाहन ने प्रश्न किया, ''मां, तुम कौन हो? यहां बैठकर क्यों विलाप कर रही हो?''

वृद्धा ने नेत्रों से आंसुओं की वर्षा करते हुए कहा, ''बेटा, यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जो ढूह देख रहे हो, नागों की हड्डियों का है। आज इन्हीं हड्डियों में मेरे बेटे शंखचूड़ की भी हड्डियां मिलेंगी। अभी गरुड़ आ रहा होगा। वह मेरे बेटे शंखचूड़ को खा जायेगा। उसकी हड्डियां ही रह जायेंगी, केवल हड्डियां ही।''

जीमूतवाहन समझ गया, वृद्धा क्या कहना चाहती है? वह मित्रवसु से पहले ही सब-कुछ सुन चुका था।

जीमूतवाहन के मन में दया उमड़ पड़ी। उसने वृद्धा को ढाढ़स बंधाते हुए कहा, ''मां, तुम अधीर न हो। मैं तुम्हारे लड़के को मरने न दूंगा।

वृद्धा ने बड़े आश्चर्य से जीमूतवाहन की ओर देखा। उसने जीमूतवाहन की ओर देखते हुए आश्चर्य-भरे स्वर में कहा, ''तुम लड़के को मरने नहीं दोगे, तुम मेरे लड़के को किस तरह बचाओगे बेटा?''

जीमूतवाहन ने उत्तर दिया, ''अपने प्राण देकर मां! गरुड़ को भोजन चाहिए न! मैं उससे कहूंगा, वह तुम्हारे बेटे को छोड़ दे। उस के बदले में मुझे खाकर अपना पेट भरे।''

जीमूतवाहन ने अपनी बात समाप्त ही की थी कि गरुड़ आ उपस्थित हुआ। उसका पर्वत के समान पेट, खोह के समान आंखें और ताड़ के समान लंबी चोंच थी।

जीमूतवाहन ने गरुड़ को देखकर कहा, ''गरुड़, आज मैं हूं तुम्हारा भोजन।''

गरुड़ भूख से अंधा हो रहा था। वह जीमूतवाहन को अपनी चोंच में दबाकर उड़ पड़ा।

गरुड़ अभी उड़कर ऊपर गया ही था कि शंखचूड़ आ पहुंचा। उसने देखा, गरुड़ उसके स्थान पर किसी दूसरे को अपनी चोंच में दबाकर उड़ा जा रहा है।

शंखचूड़ बोल उठा, ''गरुड़, तुम्हारा भोजन तो मैं हूं। तुम उसे चोंच में दबाकर क्यों उड़े जा रहे हो?''

गरुड़ ने शंखचूड़ की ओर देखा। वह नाग था, सचमुच वह उसका भोजन था, पर जो उसकी चोंच में है, वह कौन है?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गरुड़ ने प्रश्न किया, ''तुम कौन हो? तुमने क्यों यह कहा, 'आज मैं तुम्हारा भोजन हूं?''

जीमूतवाहन ने उत्तर दिया, ''शंखचूड़ की जान बचाने के लिए। दूसरों की जान बचाना, दूसरों के लिए त्याग करना सबसे बड़ा धर्म है। मैंने जो-कुछ किया है, केवल धर्म के ही कारण किया है।''

जीमूतवाहन के त्याग ने गरुड़ के मन को जकड़ लिया। उसकी रग-रग में प्रसन्नता का सागर लहरा उठा। उसने प्रसन्नता-भरे स्वर में कहा, ''तुम धन्य हो! जो दूसरों के लिए जान देता है, उसे कोई नहीं मार सकता। मैं तुम्हारे त्याग से तुम पर प्रसन्न हूं। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए?''

जीमूतवाहन ने निवेदन किया, ''पक्षिराज, यदि हम पर आप प्रसन्न हैं तो वचन दीजिए, भविष्य में आप नागों को नहीं खायेंगे। आप जिन नागों को खा चुके हैं, उन्हें जीवित कर देंगे।''

गरुड़ हर्ष से गद्गद होकर कह उठा, ''अपने लिए भी तो कुछ मांगो।''

जीमूतवाहन ने उत्तर दिया, ''नागों के लिए मांग कर मैं अपने लिए ही मांग रहा हूं, पक्षिराज! पक्षिराज, जो प्राण मुझमें है वही नागों में भी तो है।''

गरुड़ ने हर्ष से गद्गद होकर कहा, ''हां है, पर मैं तुम्हें दिए बिना नहीं रहूंगा। तुम्हारा खोया हुआ राज्य फिर तुम्हें मिल जाएगा। तुम चक्रवती राजा बनोगे।''

गरुड़ नीचे उतर आया। वह जीमूतवाहन को छोड़कर उड़ गया— दूर, बड़ी दूर!

गरुड़ के तीनों वचन सत्य हुए—नागों का संहार होना बंद हो गया, मरे हुए सभी नाग जीवित हो उठे और जीमूतवाहन का खोया हुआ राज्य उसे पुनः मिल गया।

जीमूतवाहन राजसिंहासन पर बैठकर राज्य करने लगा। उसकी कीर्ति चारों ओर छा गई, दिग्-दिगन्तर में छा गई।

वैताल ने पूरी कहानी विक्रमादित्य को सुनाकर प्रश्न किया, ''महाराज,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बताइए, आप जीमूतवाहन और शंखचूड़— दोनों में से किसे श्रेष्ठ कहेंगे?''

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''शंखचूड़ को; क्योंकि उसने यह जानकर भी कि कोई दूसरा उसके लिए अपने प्राण दे रहा है, मरने की इच्छा प्रकट की।''

विक्रमादित्य के विचार ने वैताल के मन को बांध लिया— कसकर बांध लिया।

25

सफलता की कुंजी

बहुत दिन हुए, उज्जैन में एक ब्राह्मण रहता था। ब्राह्मण का नाम वसुदेव था। वसुदेव बड़ा धर्मात्मा था।

वसुदेव के एक पुत्र था। पुत्र का नाम गुणाकर था, पर था वह बुराई का भण्डार। जुआ खेलता था, मद पीता था, मार-पीट किया करता था।

वसुदेव ने बेटे को बहुत समझाया-बुझाया, पर वह अपनी बुराइयों से बाज नहीं आया। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, उसकी बुराइयों में भी पंख लगने लगे।

माता-पिता सभी गुणाकर की बराइयों से तंग आ गए। उन्होंने उसे घर से निकाल दिया।

गुणाकर इधर-उधर घूमने लगा, दर-दर की खाक छानने लगा।

संयोग की बात, गुणाकर एक योगी के पास पहुंचा! योगी धूनी लगाए बैठा हुआ था।

गुणाकर कई दिनों का भूखा था। उसका मुख मुरझाया हुआ था। योगी ने उसकी ओर देखते हुए कहा, ''भूखे जान पड़ रहे हो! कुछ खाओगे?''

गुणाकर ने उत्तर दिया, ''खिलाएंगे तो क्यों नहीं खाऊंगा!''

योगी ने खोपड़ी के अपने पात्र को ऊपर उठाया। आश्चर्य, पात्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पूरियों और शाक से भर गया।

योगी ने खोपड़ी गुणाकर की ओर बढ़ाते हुए कहा, "लो, खाओ।"

गुणाकर ने उत्तर दिया, "मैं ब्राह्मण हूं। मैं खोपड़ी में भोजन नहीं कर सकता।"

योगी बोल उठा, "अच्छी बात है! मैं तम्हारे लिए कुछ और प्रबंध कर रहा हूं।"

योगी ने मंत्र पढ़कर बड़े जोर से आवाज लगाई, "आओ, शीघ्र आओ।"

आश्चर्य, एक अत्यन्त सुन्दर यक्षिणी सामने आकर खड़ी हो गई। योगी ने उसे आदेश देते हुए कहा, "ले जाओ इस युवक को! इसे सब प्रकार से सुख पहुंचाओ।"

यक्षिणी ने शीघ्र ही एक महल तैयार करके, उसमें गुणाकर को ठहरा दिया। उसके खाने-पीने और सोने-बैठने की व्यवस्था भी कर दी। नौकर-चाकर भी सेवा-टहल के लिए आ गए।

गुणाकर रात-भर उस महल में बड़े सुख से रहा। सवेरे जब वह सोकर उठा, तो देखता है, न महल है, न यक्षिणी है, न नौकर-चाकर हैं। वह अकेला, बिलकुल अकेला जमीन पर पड़ा है।

गुणाकर पुनः योगी के पास गया। उसने योगी से पूछा, "महाराज, वह सुन्दर स्त्री तो न जाने कहां चली गई। उसके जाने के साथ-ही-साथ सुख का सारा सामान भी गायब हो गया।"

योगी हँस पड़ा। उसने हँसते हुए कहा, "वह यक्षिणी थी। मंत्र-बल से आई थी, तुम्हें खिला-पिलाकर चली गई।"

गुणाकर ने उत्सुकता के साथ प्रश्न किया, "महाराज, यक्षिणी मंत्र के जोर से किस प्रकार आती है?"

योगी ने उत्तर दिया, "मंत्र को जपकर सिद्ध किया जाता है। जो मंत्र सिद्ध कर लेता है, उसके ही बुलाने पर यक्षिणी आती है।"

गुणाकर सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते कहा, "महाराज, कृपा कर मुझे भी मंत्र बता दीजिए। मैं भी मंत्र सिद्ध करूंगा।"

योगी को दया आ गई। उसने गुणाकर को मंत्र बता दिया, कहा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

''इसे चालीस दिन तक पानी में बैठकर जपना होगा।''

गुणाकर सिद्धि के लिए पानी में बैठकर मंत्र जपने लगा। उसने बड़े-बड़े कष्ट उठाकर चालीस दिनों तक मंत्र का जाप किया, पर उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हुई।

गुणाकर निराश होकर पुनः योगी की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने योगी से कहा, ''महाराज, मैंने चालीस दिन तक पानी में बैठकर मंत्र का जाप किया, पर मुझे सिद्धि प्राप्त नहीं हुई।''

योगी ने कहा, ''चिन्ता मत करो। उसी मंत्र को आग में बैठकर चालीस दिन तक जपो, अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी।''

गुणाकर ने कहा, ''घर से निकले हुए काफी दिन हो गए हैं। एक बार माता-पिता, भाई-बंधुओं से मिल आऊं तो जपूंगा।''

गुणाकर घर लौट गया। उसके माता-पिता, भाई-बंधु सब बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, ''अच्छा किया, तुम लौट आए। अब अपनी बुराइयों को छोड़ कर घर पर ही काम-काज करो।''

पर गुणाकर घर पर न रहा। कुछ दिनों बाद वह फिर जाने के लिए तैयार हुआ।

उसके घर के लोगों ने उसे रोकने का बहुत यत्न किया, पर वह न रुका। वह फिर योगी के पास जा पहुंचा।

गुणाकर आग के बीच में बैठकर मंत्र जपने लगा। उसने चालीस दिन तक मंत्र का जाप किया, पर उसे सिद्धि नहीं प्राप्त हुई।

गुणाकर पुनः योगी की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने योगी से कहा, ''महाराज, मैंने आग में बैठकर भी चालीस दिन तक मंत्र का जाप किया, पर मुझे सिद्धि नहीं प्राप्त हुई। बताइए, मुझे सिद्धि क्यों नहीं प्राप्त हुई?''

योगी ने उत्तर दिया, ''तुम्हारे इस 'क्यों' का यथोचित उत्तर महाराज विक्रमादित्य को छोड़कर और कोई नहीं दे सकता।''

गुणाकर महाराज विक्रमादित्य के दरबार में पहुंचा, उन्हें अपनी पूरी कहानी सुनाकर बोला, ''महाराज, बताइए, मुझे सिद्धि क्यों नहीं प्राप्त हुई?''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महाराज विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, ''सिद्धि और सफलता मन की एकाग्रता से मिलती है। तुमने मंत्र का जाप अवश्य किया, पर आधे मन से किया। तुम्हारा आधा मन तो अपने कुटुम्बियों और यक्षिणो की सुन्दरता की ओर लगा हुआ था, फिर तुम्हें सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती थी!''

महाराज विक्रमादित्य के उत्तर को सुनकर वैताल बोल उठा, ''आप बिलकुल सच कह रहे हैं, महाराज! सफलता का मंत्र मन की एकाग्रता है—दृढ़ एकाग्रता है।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रानी चतुरा

1

गुजरात के पड़ोस में मालवा देश है। मालवा की राजधानी उज्जैन नगरी है। इसी नगरी की कहानी लेकर यह बात उठी है। इस नगरी में राजा वीर विक्रम एक समय राज्य करते थे। राज्य भी ऐसा, जैसा कि राजा किया करते हैं।

दूसरों का दुख हरे और खुद दुख भोगे, दूसरों को सुखी करे और फिर संतोष की सांस ले— ऐसा राज्य। प्रजा के सुख में सुखी हों और प्रजा के दुख के साथ ही दुखी। रात-दिन प्रजा के हित में सोच और चिन्ता में डूबे रहे। ऐसे राज्य कार्य में होशियार और ऐसे ही विक्रम राजा पराक्रम में अद्वितीय— विद्या के जितने प्रेमी उतने ही आमोद-प्रमोद के शौकीन; और चौपड़ खेलने में तो इतने प्रवीण कि बात न पूछो।

राजा विक्रम के एक रानी थी। रानी जैसी रानी। जैसा रूप वैसा ही गुण। जिससे चौपड़ खेले उसी को हरा दे। लेकिन कभी ऐसा संयोग नहीं हुआ कि वह राजा विक्रम के साथ चौपड़ खेली हो अथवा खेलने बैठी हो।

रानी चतुरा की माता शिखामण ने कई बार कहा, "बेटी, ऐसी क्या बात है जो आज तक तुम राजा के साथ चौपड़ खेलने कभी नहीं बैठीं?"

राजा विक्रम जानते थे कि रानी चतुरा चौपड़ के खेल में बहुत ही प्रवीण है। वह यह भी जानते थे कि जब तक बराबर का खिलाड़ी सामने न हो, खेल का मजा नहीं आया करता। यही सब-कुछ सोचकर राजा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्राय: रानी से अपने साथ चौपड़ खेलने का अनुरोध करते पर रानी किसी-न-किसी बहाने उस बात को टाल जाती और इसके फलस्वरूप वह कभी राजा के साथ खेलने नहीं बैठी।

एक दिन तो राजा ने आखिर रानी को जबरदस्ती अपने साथ घसीट लिया। परस्पर चौपड़ खेलने बैठ गये। खेल में राजा को बड़ा आनन्द आया। आखिर खेल समाप्त हुआ। खेल में राजा हार गये। रानी की बुद्धि पर राजा दंग व चकित रह गये। बहुतों से राजा अब तक चौपड़ खेल चुके थे, पर उन्हें रानी जैसा खिलाड़ी अब तक नहीं मिला था।

रानी से हार कर राजा मन-ही-मन कुछ संकुचित हो उठे। वह कुछ बोले नहीं। रानी ही आखिर बोली, ''क्या बात है, आप सहसा चुप क्यों हो गये?''

राजा कुछ गहरे सोच में पड़े थे। रानी सहसा धीमे से मुसकरा दी। इस हलकी धीमी गति से राजा विक्रम को यों लगा जैसे किसी ने उनकी पसलियों में कोहनी मार दी हो। बोले, ''रानी, आप, एकाएक क्यों हँसीं?''

रानी बोली, ''अगर बुरा न मानो तो कुछ कहूं।''

राजा केवल इतना बोले, ''बुरा मानने की कोई बात नहीं है, रानी! दो इन्सान खेलते हैं तो उनमें एक तो हारता ही है। इसमें मेरे मुंह लटकाने की तो कोई बात नहीं।''

रानी बोली, ''यह, बात नहीं, राजा। मेरी बात को अन्यथा मत लो, मैं तो केवल यही कह रही थी कि कोई भी खेल आनन्द के खातिर होता है। जिस खेल में खेलने वालों को आन्तरिक खुशी न हो वह वास्तव में खेल नहीं होता। खेल में हार-जीत का प्रश्न ही नहीं होता। मुझे ऐसा लगता है कि आपके चेहरे पर इस खेल के बाद कोई किसी तरह की खुशी नहीं चमकी और आपका चेहरा मुरझा-सा गया। शायद इसका कारण यह हो कि आप आज एक स्त्री से हार गये। कदाचित यही बात बुरी लगी हो, परन्तु ईश्वर ने बुद्धि के संबंध में स्त्री व पुरुष में कभी कोई भेद नहीं रखा। एक बात सदा याद रखना, राजा! जितनी चतुराई पुरुष में होती है उतनी ही चतुराई स्त्री में भी।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा क्षण-भर सोच में डूबे रहे। मन-ही-मन वह सोच गये कि रानी को अपनी बुद्धि का इस समय भयंकर गर्व और मद छाया हुआ है और मन-ही-मन उन्होंने निश्चय कर लिया कि एक बार वह रानी का अहंकार जरूर उतारेंगे।

राजा विक्रम ने रानी चतुरा की परीक्षा लेने का पक्का मंसूबा बांध लिया। मन-ही-मन उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया—'एक बार देखना है मुझे कि तुझमें कितनी बुद्धि है!'

राजा ने तुरंत अपने प्रधान को बुलाया और हुक्म दिया—"फौरन एक दंडिया महल बनाओ।"

प्रधान ने आज्ञा पाते ही महल बनाने की तैयारियां शुरू कर दीं।

राजा विक्रम रानी चतुरा के पास पहुंचे और बोले, "रानी, चतुराई नाम तो उसका है जहां कोई मार्ग ही न सूझे। वैसे ही मार्ग से कोई इन्सान मार्ग ढूंढ़ निकाले और उस मार्ग से ही अमृत झरने लगे।"

रानी बोली, "सच बात है।"

राजा हँस दिये।

रानी ने पूछा, "कैसे हँसे?"

राजा बोले, "अरे, मैंने तो तुम्हें ऐसे ही एक झूठ बात कह दी थी।"

रानी थोड़ा-सा गंभीर होते हुए बोली, "कोई बात नहीं, आप बड़े हैं। फिर भी मैं आपसे निवेदन करूंगी कि जो भी आपके मन में है, जो भी चतुराई है उसे आप साबित करके मुझे दिखाओ। मैं तैयार हूं।"

राजा बोल उठे, "यह बात है तो चलो मेरे साथ।" यह कहकर राजा रानी चतुरा को अपने साथ ले 'एक दंडिया' महल में पहुंचे और बोले, "रानी, अब इस महल में से किसी प्रकार अपनी चतुराई के साथ निकल सकती हो तो कोशिश कर लेना। तब मैं तुम्हें जानूंगा।"

इस तरह राजा विक्रम ने रानी चतुरा को दंडिया महल में पूरी तरह कैद कर दिया। न वहां से निकलना था, न कहीं जाना था। केवल वहीं रहना था। अकेले दिनों को काटना था। राजा ने केवल एक दासी रानी के पास छोड़ दी थी जो उसकी देखरेख कर सके।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रानी चतुरा भारी सोच में डूब गई—'भगवान, राजा ने मेरे कौन-से अपराध का यह दंड मुझे दिया है। न मैं उस दिन उसके साथ चौपड़ खेलती और न मुझे यह दिन देखना पड़ता। राजा ने तो मुझे एक तरह से पूर्णतया सीखचों में कैद कर दिया है!'

रानी इन्हीं विचारों में खोयी हुई थी कि राजा आ गये। वह तत्पर होकर बोली, "पधारिए महाराज, मुझ पर बड़ी दया की जो आपने यहां तक आने का कष्ट किया।"

राजा बोले, "कष्ट की बात नहीं रानी। मैं तो केवल तुम्हारी बुद्धि की परीक्षा लेने आया हूं। तुम्हीं ने तो मुझे एक बार कहा था कि भगवान ने बुद्धि के संबंध में स्त्री व पुरुष में कोई भेद नहीं रखा।"

रानी को तुरन्त स्वयं ही कही हुई बात याद आ गई। जिस दिन यह बात कही थी वह भी याद आ गई। राजा विक्रम के मुंह से निकले हुए यह शब्द रानी ने बहुत ध्यान से सुने और मन में संजो लिये। सशोक रुक कर वह केवल इतना ही बोली, "आप राजा हैं, मेरे देवता भी हैं। मैं जानती हूं, आप जो भी करेंगे, मेरे भले के लिए ही करेंगे।"

राजा बोले, "रानी, और कोई बात नहीं है, मुझे केवल तुम्हारी बुद्धि परखनी है। अब जिस दिन तुम मुझे हराओगी। उसी दिन इस दंडिया महल से छूट सकोगी। वरना उस समय तक तुम्हें यहीं रहना होगा।"

रानी सुनती रही। उसे अपनी मां की कही हुई पुरानी बात याद आई—राजा लोग रानी की अक्ल परखने के लिए कभी-कभी सख्त कसौटी रखते हैं।

राजा तो इतना कह चल दिए, लेकिन रानी अकेली बैठी मन-ही-मन विचार करती रही कि 'अब राजा को किस तरह चतुराई से हराया जाए? यदि हराती हूं तो यह ठहरे राजा विक्रम। जो बोलते हैं उसी का पालन करते हैं। जिन्दगी-भर इस एक दंडिया महल में अकेली सड़ती रहूंगी। अब किस रीति से राजा को छकाऊं? इस चतुर, बुद्धिमान और विद्वान राजा को किस रीति से छकाऊं!'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

2

दासी खाना इत्यादि लेकर रोज आती। उसके सिवा इस महल में आने की किसी को आज्ञा नहीं थी। कोई मिल नहीं सकता था। इसी दासी के पास से रानी को राजा आदि के समाचार भी मिलते रहते थे।

एक दिन दासी ने रानी को समाचार दिया कि राजा कोसाम्बी नगर के राजा की राजकुमारी के स्वयंवर में जा रहे हैं। उनकी इच्छा है कि उस राजकुमारी को स्वयं वर लायें।

रानी को ज्यों ही यह समाचार मिला, वह चिन्ता में डूब गई। पल-पल में उसके प्राण राजा को किसी रीति से हराने के लिए आतुर हो उठे। हराने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था, जिससे वह इस एक दंडिया महल से मुक्त हो सके। राजा तो एक नई रानी से विवाह करने जा रहे हैं। 'नई रानी आयेगी तो मेरा सिर शर्म से नीचे गड़ जायेगा। मुख उठाकर मैं उसकी ओर देख भी न सकूंगी। राजा को यदि परीक्षा ही लेनी है तो भले ही लें, पर मैं अपने कहे हुए शब्दों को वापस लेने के लिए प्रसन्न नहीं हूं। आज भी मेरी यही मान्यता है कि बुद्धि किसी के बाप की बपौती नहीं होती।'

दासी जैसे ही रानी के पास आई, रानी ने खुश हो अपनी अंगुली में से एक सोने की अंगूठी उतार कर उसे पहना दी। दासी को तो मानो स्वर्ग मिल गया।

रानी ने दासी से पूछा, "राजा चले गये?"

दासी बोली, "नहीं, अगले सप्ताह जा रहे हैं।"

रानी मन-ही-मन विचार करने बैठ गई— अब क्या करूं? थोड़ा-सा समय है। अब क्या करूं? सहसा एक उपाय सूझा।

रानी ने जल्दी-जल्दी एक पत्र लिखा और दासी को दे दिया। दासी से कहा, "देख, यह चिट्ठी है न, इसे केवल मेरे भाई को देना। और देख, यह किसी दूसरे के हाथ में न जाए। केवल भाई को ही मिले। तू खुद उनके हाथ में पहुंचाना।"

दासी चिट्ठी लेकर रानी चतुरा के भाई के पास पहुंची और रानी के आदेशानुसार उनके भाई को ही चिट्ठी दे दी। उस समय रानी चतुरा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के भाई उज्जैन में रहते थे।

चिट्ठी पढ़ते ही रानी के भाई फिक्र में पड़ गये। बहिन की यह हालत है और मुझे खबर तक नहीं। बहिन एक दंडिया महल में पड़ी दिनों को गिन रही है। महल के चारों ओर फिरती हुई सेना का पहरा है। केवल दासी के सिवा उस महल में कोई आ-जा नहीं सकता। बहिन ने चिट्ठी में लिखा है कि 'इस कैद में से मुझे छुड़ा लो। हो सके तो इस एक दंडिया महल तक सुरंग खुदवा दो भैया ताकि मैं उस सुरंग में से होकर बाहर निकल जाऊं। भैया, बाहर फिरते हुए सिपाहियों का पहरा है। कहीं से भी निकलने का कोई रास्ता नहीं है। राजा ने ऐसा पक्का बंदोबस्त कर रखा है, भैया!'

रानी चतुरा के भाई ने उसी दिन से सुरंग खुदवाने का काम शुरू करवा दिया। रात में यह काम शुरू होता और दिन में बंद हो जाता। आठ दिन होते-होते सुरंग एक दंडिया महल तक खुदकर तैयार हो गई। जिस दिन सुरंग का काम समाप्त हुआ, उसी दिन राजा विक्रम को स्वयंवर में जाना था।

उसी दिन दासी ने आकर रानी को यह सूचना दी—''राजा आज ही कोसाम्बी जाने की तैयारी कर रहे हैं। अकेले जा रहे हैं। साथ में अपना घोड़ा ले जा रहे हैं। जाने के लिए दूसरे प्रहर का मुहूर्त निकला है। धूमधाम चल रही है।''

रानी ने सब बात जान ली। ठीक मुहूर्त देखकर उधर राजा वीर विक्रम कोसाम्बी नगर की राजकुमारी श्रीदेवी के स्वयंवर में जाने को थे। हर तरह से स्वयंवर में श्रीदेवी को जीतने का उन्होंने निश्चय कर लिया था।

निश्चित समय पर अपने सफेद घोड़े पर बैठकर बिना किसी को अपने साथ लिये राजा अकेले ही चल पड़े। राजकार्य का भार मंत्रियों को सौंप दिया और पक्का बन्दोबस्त कर दिया।

जैसे ही राजा घोड़े पर बैठकर कोसाम्बी के मार्ग पर निकले वैसे ही दासी भोजन का थाल लेकर रानी के पास पहुंची। रानी ने दासी को देखते ही उसके गले में मोतियों का एक नौलखा हार पहना दिया। दासी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

का मन खुशी से झूम उठा। वह खुशी से फिरकनी-सी नाचती हुई बोली—

"यह क्या महारानी? यह नौलखे हार की भेंट? मैं इस योग्य कहां हूं, महारानी? कोई पांच और दस सोने की मोहरें देता है, कोई सोने की अंगूठी। बहुत हुआ तो सोने की कंठी दे देता है या हार, परन्तु नौलखा हार तो आप जैसी रानी के सिवा कोई दे नहीं सकता।" यह कह वह खुशी से नाचने लगी।

रानी बोली, "दासी तेरे को एक काम करना है।"

दासी ने उत्तर दिया, "एक नहीं, हजार काम करने को तैयार हूं। आप हुक्म करिए।"

कहते हैं—पैसे में बड़ी शक्ति होती है। संसार में जो कोई भी कार्य ऐसे नहीं हो सकता हो वह पैसे से हो जाया करता है। दासी पूरी बात सुनने से पूर्व ही तैयार हो गयी थी।

रानी बोली, "देख कल से मैं यहां नहीं होऊंगी।"

दासी सहसा चौंकी।

रानी बोली, "तू घबरा नहीं। तू नित्य की भांति खाने का थाल लेकर आया करना और मेरी जगह तू ही खाना खा लिया करना। फिर थाली खाली लेकर हमेशा की तरह ले जाया करना। कोई नहीं जान सकेगा कि मैं यहां हूं या नहीं। और देख, तुझे चुप रहना है। किसी से कुछ नहीं कहना है। मैं लौट कर जब वापस आऊंगी तो तुझे एक दूसरा हार और भेंट में दूंगी। समझी? अब तू जा।"

दासी ने हां में सिर हिलाया और मुसकराती हुई वहां से चल दी। थोड़ी देर बाद रानी उस एक दंडिया महल की सीढ़ियों से उतरती हुई सुरंग में पहुंच गई और फिर चलती-चलती दूर निकल गई। काफी दूरी पर सुरंग से एक रास्ता बाहर की ओर ऊपर निकलता था। इस रास्ते से वह पुरुष के वस्त्र पहन कर बाहर निकल आई और जमीन पर चलने लगी। हाथ में एक एकतारा और तम्बूरा ले लिया। गले में मोटी-सी एक माला पहन ली। माथे पर तिलक कर लिया और मंजीरा और खरताल सांथ में ले लिये। इस तरह रानी पूर्ण भक्त-सी बनी आगे बढ़ती चली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गई। आगे भाई का घोड़ा तैयार खड़ा था। वहां उसने भाई को अपनी सारी योजना समझा दी और खुद राजा विक्रम के पीछे-पीछे कोसाम्बी नगर के मार्ग पर बढ़ती रही।

चलते-चलते वह रास्ता पूछती जाती थी। संध्या होते-होते वह एक गांव में पहुंची। इसी गांव में राजा विक्रम रात को विश्राम लेने के लिए रुके हुए थे। अंधेरा होते-होते सारे गांव में धीरे-धीरे यह बात फैल गई कि आज ही संध्या को गांव में एक भक्त पधारे हैं और गांव से बाहर एक चबूतरे पर विश्राम कर रहे हैं। उन्हें खाने-पीने की कोई चिन्ता नहीं है। बहुत बड़े भक्त दिखाई देते हैं।

धीरे-धीरे लोग उनके दर्शन करने के लिए उमड़ पड़े। भक्त हाथ में एकतारा लिये हुए भजन गान में मस्त थे।

भजन सुनकर लोग मंत्रमुग्ध हो गये। सब के मुंह से यही निकल रहा था कि वाह-वाह, क्या सुरीला कण्ठ है। एकतारा झनझना रहा था और मंजीरे की टणन-टणन की मधुर आवाज वायुमंडल में गूंज रही थी। लोग ध्यानमग्न हो गये। एक भजन, दूसरा भजन और फिर भजन के ऊपर भजन। रंग जम गया। भजन सुनने के लिए लोगों की अपार भीड़ जमा हो गई थी। कोई भी एक शब्द मुंह से नहीं बोल रहा था। सब-के-सब चुप और मौन-मूक ठगे-से बैठे थे। भजन सुनकर लोगों के दिल हिल उठे। लोग आपस में कानाफूसी करने लगे—"है तो इतनी कम उम्र, पर भजन ऐसे बोल रहे हैं जो हमने आज तक कहीं नहीं सुने। कोई बहुत ही पहुंचे हुए भक्त दिखाई देते हैं। वाह, मजा आ गया।"

राजा विक्रम एक ब्राह्मण के घर पलंग पर लेटे-लेटे सुन रहे थे। नींद तो नहीं आ रही थी। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'बहुत अच्छे भजन हो रहे हैं। चलूं, दो घड़ी भजन ही सुन आऊं; नींद तो आ ही नहीं रही।'

3

राजा चलते-चलते उस चबूतरे के निकट आ गये, जहां भजन हो रहे थे। सभी श्रोता मंत्रमुग्ध-से झूम रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भक्त ने देख लिया कि राजा भजन सुनने के लिए चले आये हैं। थोड़ी देर बाद राजा चुपचाप भक्त की बगल में एक जगह बैठ गये। थोड़ी देर बाद भक्त ने भजन गाना शुरू किया। एक के बाद एक, ऐसे-ऐसे सुन्दर भजन भक्त ने अपने मधुर कंठ से सुनाये कि राजा ख़ुशी से छक गये।

''वाह भक्त! वाह!'' राजा ख़ुशी में भर कर बोले पड़े, ''इतना सुरीला कंठ आपका, मानो गले में जादू हो। गाने का भी कैसा अनूठा ढंग है और ऐसे सुन्दर-सुन्दर भजन। एकतारे और मंजीरों का भी कितना सुन्दर मेल है। वाह-वाह!''

राजा अति प्रसन्न हो आगे बोले, ''आपके भजन सुनकर मुझे अपार आनन्द प्राप्त हुआ है। भजनों में भी इतना मीठा संगीत हुआ करता है, यह मुझे जैसे संगीत-प्रेमी ने आज पहली ही बार जाना है।''

भक्त केवल मुसकरा दिया।

रात में देर तक भजन चलते रहे।

राजा को इतना आनन्द आया कि उन्होंने भक्त से आग्रह कर-करके भजन के बाद भजन सुने। भक्त बहुत ही ध्यान से भजन सुनाता रहा। राजा की आत्मा खुशी से भर उठी।

भजन समाप्त होने पर भक्त सोने की तैयारी करने लगा। एक-एक कर सारे लोग अपने घरों की ओर चल दिये। किन्तु राजा वहीं बैठे रहे। मन-ही-मन वह भक्त का परिचय प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो उठे और इस विषय पर बातचीत छेड़ने के लिए वह अभी तक बैठे रहे।

उन्होंने भक्त की ओर ध्यानपूर्वक देखा। छोटी-सी उम्र और ललाट पर इतना भारी तेज। रूप का कोई पार नहीं। ऐसा रूप, ऐसा तेज और ऐसा भक्त उनके देखने में नहीं आया था। राजा मन-ही-मन भक्त की ओर आकर्षित हो उठे। वह मन-ही-मन इस भक्त के दोस्त बन गये और चुपचाप कोई बन्धन उन्हें भक्त की ओर खींच लाया।

राजा ने कहा, ''भक्त, तुम्हारा क्या नाम है? कहां के रहने वाले हो? किस ओर जाना है?''

भक्त बोला, ''मुझे विजयानन्द कहते हैं। रहना उज्जैन नगरी का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है। वही उज्जैन नगरी, जहां राजा वीर विक्रम राज्य करते हैं—मालवा देश। ऐसा देश, जहां ऐसा राज्य होता है जैसा न तो आज तक इस धरती पर हुआ और न कभी होगा। दूसरों के दुखों को हरने वाला राज्य।''

राजा ने पूछा, ''आप किस ओर जाओगे?''

भक्त बोले, ''जाना तो कोसाम्बी नगरी है।''

राजा गद्गद होते हुए बोले, ''ओहो, भक्त, मेरी खुशी का पार नहीं है। देखो, मुझे भी कोसाम्बी ही जाना है। मार्ग में और यात्रा में एक से दो भले होते हैं। आप मेरे साथ ही चलिये।''

भक्त बोला, ''जैसी आपकी इच्छा।'' फिर कुछ रुक कर उसने कहा, ''आप अपना भी तो कुछ परिचय दीजिये।''

राजा बोले, ''भक्त, मैं राजा विक्रम हूं। बताओ, अब इसके अतिरिक्त भी कोई और परिचय आपको चाहिए?''

भक्त खुशी से थिरक उठा, ''वाह, महाराज, बड़ी प्रसन्नता हुई। आप जैसे पराक्रमी राजा के साथ प्रवास करने का सौभाग्य किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त हो सकता है।''

थोड़ी देर की बातचीत के बाद दोनों अलग-अलग हो गये। राजा ब्राह्मण के घर आकर सो गये। भक्त उसी चबूतरे पर सो गया।

सुबह होते ही राजा घोड़े पर सवार होकर चबूतरे पर आ पहुंचे। भक्त क्षण-भर में तैयार हो गया। दोनों घोड़े पर सवार होकर चल निकले। बातें करते हुए वह कोसाम्बी का रास्ता तय करने लगे। धीरे-धीरे रास्ता कटता रहा। सारे मार्ग में राजा विक्रम ने किसी को भी यह नहीं बताया कि वह कौन हैं। उन्होंने भक्त को भी इस बात को गुप्त रखने के लिए कह दिया था।

कोसम्बी नगरी की शोभा का कोई पार न था। सारी नगरी की शोभा देखते ही बनती थी। देश-देश के राजा लोग स्वयंवर में आये हुए थे। स्वयंवर-मंडप की शोभा का भी कोई पार न था। सारा शहर अद्भुत छटा से शोभायमान था।

दूसरे दिन राजकुमारी श्रीदेवी का स्वयंवर था। श्रीदेवी राजाओं की परीक्षा लेने को थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तीन दिन तक परीक्षा का समय निर्धारित किया गया था।

पहला दिन बुद्धि की परीक्षा का था।

दूसरे दिन चतुराई की परीक्षा होने को थी।

तीसरा दिन शूरवीरता की परीक्षा का था।

इन तीनों परीक्षाओं में जो भी सफल हो सके और पार उतर सके, उसी को राजकुमारी श्रीदेवी वरेंगी।

4

देश-देश के राजा मंडप में आ गये थे। वह सब-के-सब अपने-अपने आसन पर बैठ गये थे। राजा वीर विक्रम भी सभा में आ पहुंचे। साथ में वह भक्त को भी ले आये थे। वह और भक्त दोनों ही राजा के एक बताये हुए स्थान पर साथ-साथ ठहरे थे। दोनों में अब तक अटूट मित्रता हो चुकी थी। दोनों एक-दूसरे को क्षण-भर के लिए भी छोड़ते नहीं थे। उनमें परस्पर प्रेम हो गया था।

एक श्रृंगार किये हुए हाथी पर सोने की खंबाड़ी में बैठी राजकुमारी श्रीदेवी ने थोड़ी देर बाद ही स्वयंवर मंडप में प्रवेश किया। ऐसा होते ही चारों ओर हर्ष-ध्वनि हुई। चारों ओर ढोल, नगाड़े और शहनाइयों के स्वर गूंज उठे।

श्रीदेवी के रूप को देखकर राजाओं के मन राजकुमारी के पैरों में लोटने लगे। राजा दंग रह गये। सभी को ऐसा आभास होने लगा मानो इन्द्र के यहां से कोई अप्सरा हाथी पर बैठकर धरती पर उतर आई है और अब सभा-मंडप में प्रवेश कर रही है।

राजा विक्रम और भक्त दोनों ही कुछ क्षण के लिए इस सुन्दरी श्रीदेवी को देखते रह गये। जैसे ही श्रीदेवी मंडप में आई, वैसे ही उसके भाई ने सभी राजाओं का स्वागत और सत्कार करते हुए कहा, ''हे राजाओ, आप सब मिलकर इस स्वयंवर में पधारे हैं, इसका मुझे अपार हर्ष है। आपमें से जो कोई भी हमारी प्रतिज्ञाएं पूरी कर सकेगा उसी को मेरी बहन श्रीदेवी वरेगी।'' यह कह श्रीदेवी के भाई कुछ देर रुके और फिर बोले, ''आज पहले दिन की शर्त यह है कि मंडप में जो यह घड़ा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हमने रखवाया है उसे पानी से भरकर लाना होगा। किंतु पानी नदी का नहीं, कुएं का नहीं, बावड़ी का नहीं, तालाब का नहीं, समुद्र का नहीं—इतनी जगहों का पानी नहीं होना चाहिए।''

राजाओं ने ध्यान से सुना और दूसरे ही क्षण सोच में पड़ गये थे कि धरती पर फिर और किस स्थान का पानी मिलेगा? राजा विक्रम की भी बुद्धि चकरा गई।

वह धीरे से भक्त के कान में बोले, ''भक्त, कुछ सुना तुमने? यह घड़ा कहां से भरा जाए? आया तो मैं श्रीदेवी को वरने हूं पर मेरी तो इस पहली ही परीक्षा में हिम्मत पस्त हो गई है। बताओ और कहां से पानी मिलेगा?''

राजा एकदम निराश हो गये। उनका मुंह उदास होकर उतर गया। होश कूच कर गए।

राजा को निराश देखकर भक्त ने कहा, ''महाराज, निराश होने की जरूरत नहीं। घड़ा उठा लो।''

राजा बोले, ''भक्त, आबरू चली जायेगी। लोग हँसेंगे।''

भक्त बोला, ''मैं कहता हूं, घड़ा उठा लो। आबरू कहीं नहीं जायेगी। मेरा विश्वास करो राजा।''

विक्रम सभा-मंडप में उठ खड़े हुए। शेर की सी चाल चलते हुए वह घड़े के पास पहुंच गये और दूसरे ही क्षण घड़े को अपने हाथ में उठा लिया।

सब देखते रह गये। मंडप में चारों ओर खुसर-पुसर होने लगी—'घड़ा किसने उठाया? घड़ा उठाने वाला कौन था?'

राजा विक्रम तो घड़ा उठाकर तेजी से बाहर निकल गये। पीछे-पीछे भक्त था। रास्ते में मन-ही-मन विचार में डूबे रहे—सागर का नहीं, नदी का नहीं, तालाब का नहीं और न ही बरसात और झरने का पानी चाहिए, इनके अलावा जो पानी हो उस पानी से घड़े को भरकर लाना है।

उधर मंडप से उठते हुए सब-के-सब राजा मौन बने ही बात सोच रहे थे—यह आखिर पानी लायेगा कहां से? कल इसे अपनी हँसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उड़वानी है। किस स्थान का और कहां से यह पानी लाएगा?

राजा विक्रम और भक्त अपने पड़ाव पर आ पहुंचे। राजा को चुप और सोच में डूबे हुए देखकर भक्त ने कहा, "राजा जी, फिक्र न करो, बहुत सबेरे, सूर्योदय से पूर्व हमें उठना है। जैसे ही पहला मुर्गा बांग दे, वैसे ही हमें उठकर और घड़ा लेकर यहां से निकल पड़ना है।"

राजा ने जवाब दिया, "अच्छी बात है।"

सारे दिन राजा विक्रम और भक्त खुशी-खुशी, चिन्ता मुक्त-से शहर में इधर-उधर घूमते रहे। रात में बातें करते-करते दोनों सो गये। पहले मुर्गे की बांग सुनते ही दोनों उठ बैठे। राजा के मन में अभी यही एक विचार घूम रहा था कि यह भक्त किस रीति से इस घड़े को पानी से भरेगा?

5

दोनों-के-दोनों घड़ा लेकर चल निकले। साथ में चार-पांच धुली हुई साफ चादरें ले लीं। शीतकाल का मौसम था। जंगल में चारों ओर नीले-नीले घास की शैया बिछी हुई थी। आगे-आगे भक्त चल रहा था। पीछे-पीछे राजा।

मन-ही-मन राजा विचार करते जाते थे कि यह भक्त आखिर कहां ले जा रहा है? वह धीरे-धीरे पैर उठाते हुए भक्त के पीछे-पीछे चले जा रहे थे। मन में तरह-तरह की तरंगें उठ रही थीं। चलते-चलते वह एक पहाड़ की तलहटी में जा पहुंचे। वहां चारों ओर घास का एक बहुत बीहड़ खड़ा था। घास पर ओस पड़ी हुई थी और ओस की बूंदें घास पर सफेद मोतियों की तरह चमक रही थीं।

भक्त बोला, "राजा, देखा पानी? अब इस घास पर एक-एक चादर को आहिस्ता से फैलाते जाओ और जैसे ही चादर ओस की बूंदों से भीगकर गीली गच हो गए वैसे ही चादर घड़े में निचोड़ लो। इस तरह इन चादरों से सारा घड़ा थोड़ी देर में भर जायेगा।"

राजा भक्त की बुद्धि से प्रभावित होकर इतने खुश हुए कि खुशी का पार न रहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा और भक्त दोनों मिलकर चादरों को फैलाते जाते थे और जैसे ही चादरें भीग जाती थीं, वैसे ही घड़े में निचोड़ देते थे। इस तरह चार पांच चादरों की मदद से घड़ा सूर्योदय से पूर्व ही छलाछल भर गया।

राजा की खुशी का पार न था। वह खुशी में फूटते हुए बार-बार यह कह रहे थे। "शाबाश! भक्त शाबाश! तुमने मेरी आबरू रख दी।"

भक्त बोला, "राजा जी यह सब आप के ही प्रताप से हुआ है। हम तो केवल आपकी प्रजा हैं। आप हमारे मालिक हैं, स्वामी हैं।"

राजा ने कहा, "ऐसा मत बोलो, भक्त! यह सब आप ही की बुद्धि का प्रताप है।"

राजा और भक्त धीरे-धीरे पानी से छलाछल भरे हुए घड़े को लिये हुए अपने विश्राम स्थान पर ले आये। दोनों ने मिलकर घड़े को नीचे उतार कर रख दिया और फिर मुंह पर से उसे एक मजबूत कपड़े के साथ बांध दिया।

स्वयंवर में जाने के समय वहां से भक्त ने घड़ा उठा लिया और दोनों सभा मंडप की तरफ चल पड़े।

सभा ठसाठस भरी थी। सभी राजा अपने-अपने स्थान पर बैठे थे। सहस्त्रों नजरें मंडप के द्वार की ओर अधीर हो लगी हुई थीं। घड़ा लाने वाले का क्या हुआ—यह जानने को सभी अधीर हो रहे थे। एक विचित्र-सी हलचल मची हुई थी। उसी समय राजा विक्रम और भक्त दोनों ने घड़ा लिये हुए मंडप में प्रवेश किया।

राजकुमारी श्रीदेवी उपस्थित थीं।

मंडप में बैठे हुए अनेक राजा तत्काल उठकर घड़े की ओर लपके-घड़े के मुंह पर बंधे हुए कपड़े को उन्होंने तुरन्त खोला, ढक्कन को हटाया और घड़े को छलाछल पानी से भरा देखा तो आश्चर्य-चकित रह गये।

इतने में श्रीदेवी के भाई ने खड़े होकर बुलन्द आवाज में सबको यह सूचना दी, "हे राजाओ, यह घड़ा पानी से भरा हुआ है। अब यह घड़ा कहां के पानी का भरकर लाया गया है। यह घड़ा लाने वाले स्वयं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आपको बतलायेंगे।''

सुनते ही राजा विक्रम खड़े हो गए और सिंह की सी गर्जन भरी आवाज में बोले, ''मैं यह घड़ा ओस की बूंदों से भरकर लाया हूं। नदी, तालाब, दरिया, बावड़ी, कुआं, सागर, बरसात या झरने का यह पानी नहीं। घास पर जमी ओस की बूंदों से चादर को भिगो-भिगो कर और फिर उन्हें निचोड़-निचोड़ कर मैंने यह घड़ा भरा है।''

सारी-की-सारी सभा स्तब्ध रह गई। श्रीदेवी भी घड़ा भरने वाले की बुद्धि पर चकित रह गई और उसका मन अपार प्रसन्नता से भर उठा। श्रीदेवी के भाई और उसके पिता दोनों ही बहुत खुश हुए।

घड़ा भरने वाला आखिर है कौन? यह कोई नहीं जान सका। राजा विक्रम ने स्वयं की जानकारी सब से गोपनीय रखी और भक्त ने भी यह भेद किसी पर प्रकट नहीं किया। कोई नहीं जानता था कि यह उज्जैन नगरी के राजा विक्रम ही हैं। वह ऐसी ही रीति से कौसाम्बी में रह रहे थे।

6

आज दूसरे दिन की कसौटी थी। श्रीदेवी के पिता राजा खुद के एक घोड़े के पास खड़े हुए थे। घोड़ा थनगन-थनगन नाच रहा था। श्रीदेवी के भाई राजकुमार श्रीकान्त सभा में सूचित करते हुए बोले, ''इस घोड़े पर सवारी करके एक योजन दूर स्थित बगीचे में कमल का फूल तोड़कर लाना है। आधे घण्टे के भीतर फूल यहां लाकर दे देना है।''

अच्छे-अच्छे राजकुमारों ने घोड़े को देखा। फिर अच्छे-अच्छे घुड़सवार राजा उठे।

घोड़ा किसी को पास फटकने नहीं दे रहा था, किसी को भी हाथ नहीं लगाने दे रहा था, किसी को प्यार से हाथ फेरने नहीं दे रहा था। जैसे ही कोई पास जाता था वैसे ही घोड़ा बिदक कर चार हाथ दूर उछल कर खड़ा हो जाता था। जैसे ही लगाम पकड़ने को कोई होता तो वैसे ही वह चारों पैरों से उछल पड़ता और लातें मारना शुरू कर देता। ऐसा शैतान घोड़ा था कि एक-दो ने जैसे ही एक पैर में डाला

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैसे ही वह चारों पैरों से उछल पड़ता और उसे धरती चटा देता और चढ़ने वाला औंधे मुंह जमीन पर पड़ा हुआ दिखाई देता।

जैसे ही कोई सवार उसके पास जाकर पीठ की सवारी गांठने का साहस करता वैसे ही वह घोड़ा पैरों को उछालना शुरू कर देता और जोर-जोर से हिनहिनाना शुरू कर देता। ऐसा तूफानी घोड़ा था। किसी को अपने ऊपर सवार नहीं होने दे रहा था। किसी को पास भी नहीं आने दे रहा था।

बहुत-से कहने लगे—"क्या ऐसे जंगली घोड़े पर सवार होकर कमल लाना है? किसकी शामत आई है!"

कुछ कहने लगे, "ऐसे अद-बिलाव बिगड़े घोड़े को क्या इस काम में लाना है? क्या राजा हमारे साथ दिल्लगी कर रहे हैं?"

बहुत-से तमाशा देख रहे थे। कितने गिर पड़े, कितनों को उसने पछाड़ दिया। बहुतों ने सभी प्रकार के प्रयत्न किये किन्तु उस घोड़े पर कोई भी सवार न हो सका।

विक्रम बोले, "भक्त, मेरे बारे में क्या विचार है?"

भक्त ने कहा, "घोड़ा उम्दा है, बढ़िया और जानदार भी है।"

राजा बोला, "हां, घोड़ा उम्दा है, यह तो ठीक है। ऐसा घोड़ा मेरे अस्तबल में एक भी नहीं है। ऐसा उम्दा घोड़ा मैंने आज तक नहीं देखा पर यह किसी को भी पीठ पर सवारी नहीं गांठने दे रहा है—इसका क्या कारण हो सकता है?"

भक्त कुछ क्षण बैठे-बैठे अपनी नजरों से यह तमाशा देखते रहे और फिर बोले, "राजा जी, आप बेधड़क होकर जाइये और इस पर सवारी करके कमल लाइये। पवन वेग-सा उम्दा घोड़ा है, पर किसी को इसकी परख नहीं है।"

विक्रम बोले, "घोड़ा उम्दा ही नहीं, सुन्दर भी है। मेरे घोड़ों से भी सुन्दर है और खानदानी भी है। किन्तु किसी को लगाम तक नहीं पकड़ने देता, इसका क्या कारण है?" यह कह राजा कुछ क्षण रुके और फिर बोले, "मैं यदि इसके पास जाऊं और मेरी भी वैसी ही दशा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हो जो औरों की हुई है तो? मेरे पैर उठते ही नहीं, भक्त! मन में डर बसा हुआ है। कारण मैं स्वयं नहीं जानता कि इतना उम्दा घोड़ा होते हुए भी यह ऐसा वाचाल और तूफानी क्यों बना हुआ है?''

भक्त बोला, ''राजा, बेधड़क जाओ। देखो, जैसे ही इसके पास जाओ वैसे ही इसका मुंह दूसरी ओर फेर देना। यह अपनी खुद की परछाईं देखकर भड़क रहा है। यह अपनी परछाईं को न देख सके और इसकी नजर इसकी परछाईं पर न पड़ सके, उस दिशा में इसका मुंह फेर देना और इस पर सवारी गांठ लेना। अब खुद देख लो, इस घोड़े का यह नाच। आपको पता लग जायेगा कि इसके नाचने का वास्तव में क्या कारण है!''

विक्रम का जी हुआ कि खुशी से भरकर भक्त से लिपट जाए पर यह अवसर इस बात के लिए उपयुक्त न था। वह सहसा उठ खड़े हुए। राजा विक्रम के खड़े होते ही सारे मंडप में तालियां बज उठीं। चारों ओर खलबली-सी मच गई—'अरे, यह वही है जो पानी का घड़ा भरकर लाया था। पर इस बार घड़ा नहीं भरना है। बच्चू को अभी मजा मालूम हो जाएगा। यह वही घोड़ा है जिसने हमें ही नीचे पटक डाला और मिट्टी चखा दी। यह लड्डू खिलाने के लायक घोड़ा नहीं है!'

इस तरह विचित्र-विचित्र बातें मंडप में होने लगीं।

राजा विक्रम हाथी की चाल से धम्म-धम्म पैर रखते हुए घोड़े के पास जा पहुंचे। फड़ाक करती लगाम को उन्होंने हाथ में ले लिया और इसी क्षण घोड़े का मुंह दूसरी ओर फेर दिया। मुंह का फेरते ही जादू-सा हो गया। घोड़ा एकदम शांत हो गया। अब न तूफान था, न मस्ती और न हिनहिनाना। सब गायब। घोड़ा एकदम शांत था। मानो राजा विक्रम का खुद का ही पाला हुआ कोई घोड़ा हो।

राजा विक्रम ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा और फिर उसे पुचकारते हुए फड़ाक से छलांग मारकर घोड़े की पीठ पर सवार हो गये। फिर एक एड़ मारते ही घोड़ा पवन-वेग से छूट चला और हवा में उड़ता-सा बारह ही मिनट में एक योजन के अन्तर को तय कर गया। वहां बगीचा दिखाई दिया। वहां राजा के आदमी उपस्थित थे। राजा विक्रम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

घोड़े से उतर गये और बगीचे के तालाब से एक कमल तोड़कर वापस घोड़े पर सवार हो गये। फिर दस मिनट के अन्दर ही वह सभा में मौजूद थे।

अभी आधे घंटे का समय था। घोड़े को वापस आया देख, सभा में चारों ओर हर्ष-ध्वनि सुनाई देने लगी। तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी।

बहुत-से कहने लगे, ''क्या इसने घोड़े पर जादू कर दिया है? यह तो किसी को हाथ तक नहीं लगाने दे रहा था और इसके हाथ लगाते ही यह एकदम शान्त हो गया। जरूर यह घड़ा भर कर लाने वाला कोई विचित्र और रहस्यमय आदमी दिखाई देता है।''

इस तरह मण्डल में तरह-तरह की बातें होने लगी। थोड़ी देर बाद सभा बिखर गई। सब अपने-अपने ठिकाने चले गये। भक्त और राजा विक्रम अपने विश्राम स्थान की ओर लौट आये।

विक्रम बोले, ''भक्त, संयोग ने और भाग्य ने आपको मेरे साथ कर दिया वरना मैं अकेला क्या कुछ कर सकता था? आपकी मदद मेरे लिए बड़ी मूल्यवान सिद्ध हुई है।''

भक्त ने कहा, ''राजन, आदमी प्रयत्न करने में जैसे ही आलस्य करता है वैसे ही हिम्मत हार जाता है; और जैसे ही हिम्मत हारता है वैसे ही जीवन दुखमय बन जाता है। मनुष्य को बुद्धि से प्रयत्न करना चाहिए और इस प्रयत्न में लगन के साथ लगे रहना चाहिए। हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।''

विक्रम बोले, ''तुम्हारे साथ के कारण मेरी हिम्मत टिकी रही।''

इस प्रकार बातें करते-करते दोनों खुशी से भरे लौट आये। राजा तो भक्त पर बहुत ही प्रसन्न थे क्योंकि भक्त के उपकार भूलने योग्य न थे।

दो कसौटी तो पार हो गई थीं और राजा विक्रम उनमें सफल हो गये थे। अब कल तीसरी कसौटी सामने थी। उसमें क्या-कुछ कहना होगा, यह वह नहीं जानते थे। कोई भी नहीं जानता था।

थोड़ा विश्राम कर चुकने पर दोनों सैर के लिए निकल पड़े। संध्या को भोजन किया और फिर आराम के साथ बातें करते-करते सो गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

7

तीसरे दिन दोनों नित्य-कर्म के बाद स्वयंवर सभा-मंडप में उपस्थित होने के लिए चल पड़े।

कोई नहीं जानता था कि यही राजा विक्रम है। यह भी कोई नहीं जानता था कि राजा विक्रम ने. बीड़ा उठाया है।

कोई भी जिस कार्य को नहीं कर सका, उसी कार्य को राजा ने कर दिखाया था।

आज सभी के मुंह से एक ही बात निकल रही थी कि श्रीदेवी का विवाह उसके पिता महाराजा घड़ा भरकर लाने वाले आदमी से अवश्य कर देंगे।

आज सभा का रंग पिछले दो दिनों से भी कहीं ज्यादा जमा हुआ था। आज तो सभा-मंडप इतना भरा हुआ था कि तिल रखने को भी स्थान न था। कसौटी का आज अन्तिम दिन था। आज श्रीदेवी किसके गले में वर माला डालेंगी, यह देखने को सभी उत्सुक थे और हजारों नेत्र अधीर थे।

अधिकतर लोगों को पूर्ण विश्वास था कि घड़ा भरने वाला और कमल लाने वाला आज अवश्य वरमाला पहनेगा।

बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं और श्रीदेवी के माता-पिता राजा विक्रम के वेश से यह पता ही न लगा सके कि यह कौन है। वस्त्रों से वह सामान्य मानव दिखाई देते थे। उन्होंने क़िसी पर भी अपना भेद प्रकट नहीं होने दिया था।

आज श्रीदेवी बहुत ही सुन्दर श्रृंगार से शोभायमान थी। श्रीदेवी के हाथ में सुन्दर फूलों से गुथी हुई वरमाला सुशोभित हो रही थी।

जैसे ही श्रीदेवी ने सभा-मंडप के दरवाजे में प्रवेश किया वैसे ही धूमधाम शुरू हो गई। बाजे बजने लगे। शहनाइयों के स्वर गूंजने लगे। ढोल और नगाड़े तड़म-तड़म की धइयम-धइयम गाने लगे।

भाट और चारण कविताएं ललकारने लगे और ब्राह्मण वेदवाणी में आशीर्वाद देने लगे।

चारों ओर धूमंधाम मच रही थी। श्रीदेवी मण्डप के बीच अपने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रूप की छटा बिखेरती हुई एक जगह आकर खड़ी हो गईं। राजकुमार श्रीकान्त ने खड़े होकर ऊंचे स्वर में सबको जाहिर किया—"आज अन्तिम दिवस है। आज गोफन में एक कैरी रख कर ऊपर फेंकना है। यह जमीन पर गिरे उससे पूर्व उसे बींध डालना है। यहां यह धनुष और तीर रखे हैं।" यह कह श्रीकान्त बैठ गया।

तुरन्त एक के बाद एक राजा सभी खड़े हो गये और इस अन्तिम परीक्षा में भाग लेने के लिए आगे बढ़ आये। किसी का तीर कैरी को नहीं लग रहा था। गोफन में फेंकी हुई कैरी आकाश में उड़ती हुई बहुत ऊंची जाती थी और फिर तेजी के साथ पृथ्वी की ओर नीचे गिरने लगती थी। पर अधर में कैरी को किसी का तीर जाकर बींध नहीं सका; और कैरी जमीन पर बिना बिंधे ही गिर जाती थी। कोई भी तीरंदाज ऐसा नहीं निकला। किसी-किसी से तो धनुष को ठीक ढंग से उठाकर तीर तक नहीं फेंका गया। यदि किसी ने तीर फेंका भी, तो या तो वह आड़ा निकल गया था या फिर तिरछा। कोई-कोई तो धनुष ही नहीं उठा सका और यदि किसी ने धनुष उठा भी लिया तो उसे चढ़ा नहीं सका। यदि किसी ने चढ़ा लिया तो बराबर निशाना न बांध सका। सब के दिलों में निराशा छा गई।

राजा विक्रम बैठे-बैठे सामने की ओर देख रहे थे।

सबके दिलों में निराशा ब्याप गई। श्रीदेवी और उसके माता-पिता पर भी चिन्ता छा गई।

कितने ही बातें करने लगे—"वह घड़ा भरकर लाने वाला आज चुपचाप कैसे बैठा है? वह खड़ा क्यों नहीं हो रहा है?"

कोई कह रहा था, "वह किस तरह खड़ा हो? वह घड़ा भर लाने से और कमल का फूल ले आने से ही शूरवीर नहीं बन गया। यदि शूरवीर हो तो उठाये धनुष।"

राजा विक्रम मुर्झाये-से बैठे थे। उनके आसपास बैठे हुए अनेक राजा विक्रम की ओर देखकर मन-ही-मन मुस्करा रहे थे।

राजा विक्रम ने भक्त की ओर देखा, भक्त ने उनकी ओर; और कहा, "किस सोच में डूब रहे हो? मेरा मुंह क्या तक रहे हो?"

विक्रम बोले, "क्या करूं? आबरू के कंकर हो रहे हैं। यदि ऐसा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जानता तो घड़ा न भरता, कमल का फूल तोड़ कर न लाता। कुछ न करता तो अच्छा था।''

भक्त जी बोले, ''क्या सोच करते हो? क्या पागलपन की बातें कर रहे हो? हो जाओ खड़े।''

राजा ने कहा, ''क्या हँसी करवाने?''

भक्त बोले, ''बुद्धि हो तो वाह-वाह हो और बुद्धि न हो तो अवश्य हँसी हो।''

राजा ने कहा, ''भक्त जी, आप मुझे कोई अजीब आदमी मालूम देते हो। भला बताओ, इस कार्य में बुद्धि का क्या काम है? इस में तो बल और शक्ति का काम है।''

भक्त ने कहा, ''इसमें बल का नहीं राजन बल्कि कला का काम है। जहां बल और कला दोनों एकत्र हो जाते हैं वहां विजय ही विजय होती है। आपके पास बल तो है पर कला नहीं है।''

भक्त जी की यह बात सुनकर राजा विचार में पड़ गये। बहुत ही विचार किया पर कोई उपाय नहीं दिखाई दिया। भक्त जी बोले, ''होओ न खड़े, महाराज।''

राजा ने कहा, ''क्या करूं, मेरा मन पीछे खिसक रहा है।''

भक्त जी बोले, ''पर क्यों? क्या आपसे आपका निशाना कैरी पर नहीं लग सकता है?''

विक्रम बोले, ''देखो भक्त, शायद तुम्हें बाण विद्या का इतना ज्ञान नहीं है। बाण तो मैं ऐसा मार सकता हूं कि मेरे तीर से कैरी बच नहीं सकती, पर प्रश्न इस बात का है कि कैरी बिंधे कैसे?''

भक्तजी बोले, ''क्यों? बिंधे क्यों नहीं? कोई कारण तो होना चाहिए?'' राजा ने उत्तर दिया—''कारण यह है कि कैरी में रस होता है। यदि तीर मारा जायेगा तो वह रस के कारण फिसल जाएगा पर कैरी के अन्दर की गुठली बिंध नहीं सकेगी।''

भक्त ने कहा, ''ओहो, यह बात है! ऐसा बोलो ना! तो लो इसका उपाय बताता हूँ।''

भक्त जी ने उपाय बताया कि जिस समय कैरी ऊपर से नीचे की ओर गिरे उसी समय आप उसके नीचे से तीर मारना। आड़ा तीर मारने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

से तीर की नोक फिसल सकती है, पर ठीक नीचे से तीर मारने की नोक कैरी के ऊपर बैठती हुई उसे बींधती चली जाएगी।''

यह बात सुनते ही राजा ने खुशी से भरकर भक्त की पीठ पर जोर का एक धौल जमाया और तत्काल उठ खड़े हुए। उन्होंने ब्राह्मणों और सभी सभाजनों को नमस्कार किया और फिर धनुष-बाण के पास पहुंच गये। धनुष को नमस्कार किया और फिर उसे धीमे से उठा लिया। इसके बाद धनुष की प्रत्यंचा खींच कर और उस पर तीर चढ़ा कर वह तैयार हो गये।

चारों ओर एकदम शांति छा गई। यदि कोई सुई भी गिरे तो उसकी आवाज सुनाई दे—ऐसी शांति। सहस्त्रों नजरें निशाने की तरफ एकटक लग गईं।

गोफन में रखकर कैरी को ऊपर फेंका गया। विक्रम ने तीर तान लिया और कैरी को ताकते हुए देखते रहे। जैसे ही कैरी नीचे आई, उन्होंने तीर छोड़ दिया। सन्न सन करता हुआ तीर छूटा और उसने कैरी को बींध डाला। जमीन पर पड़ने के पूर्व ही तीर ने कैरी को अधर से ही उड़ा दिया। कैरी को लेकर तीर कहां चला गया सो कोई नहीं जान सका।

सभा में तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी। ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे। बाजे, ढोल और नगाड़े बजने लग गये। मंडप में खड़ी श्रीदेवी धीरे-धीरे बाहर आई और उन्होंने कैरी बींधने वाले के गले में वर माला पहना दी। इसके बाद श्रीदेवी ने विक्रम को सिर झुका कर नमन किया और पास खड़ी हो गईं। विक्रम, श्रीदेवी और भक्त के साथ श्रीदेवी के पिता के राजमहल की ओर चल दिये।

राजा विक्रम को श्रीदेवी के पिता ने कुछ दिन अपने यहां ही रोके रखा। राजा विक्रम ने जाने की बहुत उतावली की, पर राजा जाने ही नहीं देते थे। उनक़ा कहना था कि 'अब यहीं रहो और मेरा सारा राजपाट ले लो और उसे संभालो।'

राजा विक्रम सहमत नहीं हुए।

श्रीदेवी को अपने पिता का घर छोड़कर जाना रुचिकर नहीं लग रहा था, परन्तु अब गये बिना और कोई उपाय भी नहीं था। राजा विक्रम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भी वहां और अधिक ठहरना नहीं चाहते थे।

राजा भारी चिन्ता में पड़ गये थे और अपनी बेटी श्रीदेवी को अपने से दूर भेजने में उनका मन दुखी हो रहा था। इसी चिन्ता के कारण वह शोक-ग्रस्त से दिखाई देते थे। उनका किसी भी बात में जी नहीं लगता था। संसार के सारे पदार्थ उन्हें सौन्दर्य-विहीन नजर आते थे। राजा इन्हीं सब बातों को लेकर गुमसुम-से एकान्त में बैठे थे।

उधर राजा विक्रम शीघ्र-से-शीघ्र वहां से प्रस्थान करने की चिन्ता में घुल रहे थे। यह चिन्ता भक्त में छिपी न रही। एक दिन तो भक्त ने आखिर पूछ ही लिया, ''क्या बात है, शूरवीर! आपको किस बात का दु:ख है?''

राजा ने इधर-उधर की बहुत-सी बातें कहीं और फिर बोले, ''और तो सब ठीक है, पर मेरा मन घर जाने को बहुत ही अधीर हो रहा है। मैं अब यहां और अधिक नहीं ठहर सकता।''

भक्त ने कहा, ''बस, इतनी-सी बात है? यह तो मामूली-सी बात है। आप राजा से जाकर कह दें कि हमारे कुल की रीति के अनुसार विवाह के पश्चात हमें कुलदेवी के पैर पड़ना अति आवश्यक है। यदि एक महीने के भीतर हम पैर न पड़े तो हमें पाप लगेगा।''

विक्रम राजा ने यही बात श्रीदेवी के पिता से जाकर कह दी।

श्रीदेवी के पिता राजा बोले, ''यदि ऐसा है तो मैं आपको और अधिक रोकना नहीं चाहूंगा। आप जरूर जाइये। धर्म के काम में ढील नहीं करनी चाहिए।''

श्रीदेवी के पिता ने अपनी बेटी को कन्यादान में अपार धन-दौलत, हाथी-घोड़े और जमीन इत्यादि दी पर विक्रम ने कुछ भी स्वीकार नहीं किया। राजा विक्रम भक्त और श्रीदेवी को अपने साथ लेकर उज्जैन नगरी जाने के लिए तैयार हो गये।

श्रीदेवी को ले जाने के लिए उसके पिता ने एक खास रथ तैयार करवाया। वह उस रथ में बैठ गई। राजा विक्रम खुद के अपने घोड़े पर सवार हो गये और भक्त को अपने पीछे बिठा लिया। इस तरह वह सब साथ-साथ कोसाम्बी से चल पड़े।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आगे-आगे रथ चलता जा रहा था। पीछे-पीछे घोड़े पर सवार राजा विक्रम चले आ रहे थे। श्रीदेवी नहीं जानती थी कि उसे वरने वाला कौन है और उसे कहां ले जा रहा है। इस संबंध में उसे कोई खबर नहीं थी। यदि वह कुछ जानती थी तो बस केवल यही कि उसका पति चतुर है, बहुत ही बुद्धिमान है, बहुत ही शूरवीर है—कोई ऐसा वैसा साधारण आदमी नहीं है। और इसी एक बात से वह बहुत ही सन्तुष्ट थी इसके अतिरिक्त वह और कुछ जानना भी नहीं चाहती थी।

रास्ते में एक गांव आया। वहां उस रात वह सब रुक गये। गांव के बाहर ही महादेवीजी का मंदिर था। इस मन्दिर में रात गुजारने का उन्होंने निश्चय कर लिया और तीनों वही रुक गये। रथ को मन्दिर के चौक में छोड़ दिया गया। भक्त ने कहा, "आप लोग यहीं बैठो, मैं गांव में जाकर खाने के लिए कुछ फलाहार इत्यादि ले आता हूं।"

श्रीदेवी बोली, "खाने के लिए तो अपने साथ ही बहुत सारी सामग्री बंधी हुई है। रथ में सब सामग्री रखी हुई है।"

भक्त ने कहा, "सामग्री रखी है, अच्छी बात है; पर आज तो मेरा मन बाजार से कंदक लाने को हो रहा है।"

विक्रम बोले, "जैसी आपकी इच्छा। अपने लिए जो भी चाहे ले आओ।"

भक्त की जो भी इच्छा होती है उसमें विक्रम अपनी ओर से कभी हां या न नहीं करते। न वह कारण पूछते हैं और न विरोध ही करते हैं।

भक्त गांव में पहुंचे। एक मिठाई वाले की दुकान से थोड़ी-सी मिठाई ली और थोड़े से मगद के लड्डू और थोड़ी देर में लौट आये। तीनों ने मिलकर साथ बैठकर फिर खाना खाया। भक्त ने गांव से आते समय मगद के एक लड्डू में थोड़ी-सी एक दवा मिला दी थी। वही लड्डू उसने चतुराई से विक्रम की ओर बढ़ा दिया, बाकी के लड्डू उसने स्वयं खाये और श्रीदेवी को दिये। विक्रम उस पहले लड्डू को खा गये।

खा-पी चुकने के उपरान्त इधर-उधर की बहुत-सी बातें करते हुए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वे सो गये। मन्दिर के पुजारी ने तीन खाटें बिछा दी थीं। उन पर तीनों ने अपने बिस्तर बिछा लिये थे और आराम से लेट गये थे।

मन्दिर के पास ही एक तालाब था। तालाब में उतरने के लिए पगथियां बनी हुई थीं। तालाब का पानी स्वच्छ था। भक्त के पास कमंडल था। इस कमंडल में पानी भरकर भक्त सदा अपने खाट के नीचे रख छोड़ देते थे। यह उनका नियम था। इसी कमंडल के पानी से वह नित्य अपने हाथ-पैर धो लेते थे। आज उन्होंने कमंडल के पानी से अपने हाथ-पैर एक कटोरे में धोये और कटोरे को खाट के नीचे रख दिया।

थोड़ी रात बीती तो राजा विक्रम को प्यास लगी। उन्होंने भक्त से कहा, ''भक्त, बहुत जोर की प्यास लगी है। पानी होगा क्या?''

भक्त बोला, ''है।''

कमंडल में से विक्रम ने पानी पिया। थोड़ी देर बाद फिर प्यास लगी तो बोले, ''भक्त, आज बहुत प्यास लग रही है, पानी चाहिए।''

भक्त ने फिर से कमंडल में से पानी पिलाया। थोड़ी ही देर बाद विक्रम को फिर प्यास लगी। बोले, ''भक्त, मेरा कंठ-सूख रहा है। घड़ी-घड़ी मुझे प्यास लग रही है। इतना पानी पी रहा हूं फिर भी प्यास नहीं बुझ रही है।''

भक्त बोला, ''अच्छा। जितनी प्यास है, उतना ही पानी पी लो।'' यह कह भक्त ने कमंडल में से उन्हें पानी पिलाया।

राजा जितना पानी पी रहे थे उतनी ही प्यास बुझने के बजाय और तीव्र होती जाती थी। इस तरह होते-होते कमंडल का पानी भी खत्म हो गया।

थोड़ी देर बाद सूखे कंठ से राजा बोले, ''भक्त, कंठ सूख रहा है, जल्दी से मुझे पानी दो।''

भक्त बोले, ''तालाब पास में है। ठहरो, मैं अभी भर लाता हूं।''

राजा बोले, ''इस कटोरे में पानी भरा है न?''

भक्त बोला, ''यह तो मेरे हाथ-पैरों का धोया हुआ पानी है। यह पानी पीओगे?''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विक्रम ने कहा, ''अरे भाई, तुम्हारे पैरों का धोया हुआ पानी ही मुझे पीने के लिए मिलना चाहिए। मेरा ऐसा भाग्य कहां है कि तुम्हारे जैसे भक्तराज के धोये हुए पैरों का पानी मुझ को मिले। लाओ, लाओ, जल्दी करो। मेरा प्यास से बुरा हाल है।''

उसी समय विचित्र चमत्कार हुआ। भक्त के पैरों का धोया हुआ पानी पीते ही विक्रम की सारी प्यास बुझ गई और फिर दोबारा प्यास न लगी। विक्रम के अचम्भे का पार न था। वह मन-ही-मन भक्त के गुणों का बखान करने लगे। फिर प्रकट में बोले, ''वाह भक्त वाह, धन्य है तुम्हारी माया।''

कुछ देर बाद विक्रम की पुनः आंख लग गई। सुबह मुर्गा बोला और कौवे कांव-कांव करने लगे। चिड़ियां चीं-चीं करती हुई उठ उड़ा-उड़ी करने लगीं तो विक्रम की आंख खुल गई। उन्होंने उठकर भक्त और श्रीदेवी को जगाया और रथ तैयार करवाया। पुजारी जी की चरण रज ली और दक्षिणा दी। भगवान शंकर के पैरों में मस्तक टेका और फिर तीनों-के-तीनों वहां से चल पड़े।

रास्ते भर श्रीदेवी के मन में यही एक उथल-पुथल चलती रही कि यह मुझे कहां ले जा रहे हैं? आखिर कौन हैं यह?

चलते-चलते वह उज्जैन नगरी की सीमा में आ पहुंचे। इतने दिन उज्जैन नगरी को छोड़े हुए हो गये थे। इसलिए आज वहां लौटने पर राजा का मन बहुत ही आनन्दित था।

विक्रम बोले, ''भक्त, अपनी धरती के छोर पर आ पहुंचे हैं।''

भक्त ने पूछा, ''धरती का छोर कैसे महाराज।''

विक्रम बोले, ''जहां कहीं जाओ, देस-परदेस जाओ, किन्तु घर आखिर घर ही होता है। घर वापस लौट आने पर धरती का छोर ही एक प्रकार से आ जाता है।''

थोड़ी दूर चलने पर और नगरी की आबादी शुरू होने पर सहसा भक्त ने कहा, ''थोड़ा घोड़ा रोकिए, महाराज, मैं उतरूंगा।''

विक्रम ने तत्काल पूछा, ''क्यों?''

भक्त ने उत्तर दिया, ''अब यहीं से विदा मांगता हूं। मेरी राम-राम स्वीकार कीजिए महाराज।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विक्रम आश्चर्य में भरकर बोले, ''वाह रे वाह भक्त, सारा प्रताप आपका रहा। आपके ही कारण मेरे सारे संकटों का हरण हुआ और मैं सब-कुछ योग्य बना। अब मैं तुम्हें इस तरह थोड़े ही जाने दूंगा। तुम्हें मेरे साथ ही चलना होगा। जाने की बात मुझसे अभी मत बोलो।''

भक्त ने क्षमा याचना करते हुए कहा, ''हम साधु लोग हैं, महाराज! रमते जोगी हैं। आपका-हमारा साथ कैसा चलेगा? राजा और जोगी का साथ कहां-कब निभ सका है? यह तो कोई कुदरत का इशारा था जिसके कारण हमारी परस्पर भेंट हो गई। अपनी हेत और प्रीत कोई आपके साथ चलने से ही नहीं बनी रहेगी। संस्कार ने फिर कभी मिलाया तो अवश्य मिलेंगे। अभी तो क्षमा और आज्ञा चाहूंगा।'' यह कह भक्त तत्काल घोड़े पर से उतर गये और अपना सामान अपनी बगल में दबा लिया।

राजा ने बहुत आग्रह किया और भक्त को साथ चलने के लिए कहा, किन्तु भक्त नहीं माना और राजा से राम-राम करके और श्रीदेवी से विदा मांगते हुए एक ओर चल पड़ा। कुछ देर राजा घोड़े पर बैठे भक्त को देखते रहे और फिर हार कर वह नगर की ओर बढ़ गये।

9

इधर सारे उज्जैन नगर में खबर पहुंच गई कि राजा स्वयंवर में से राजकुमारी श्रीदेवी को वर लाए हैं इसलिए पहले से ही मंत्रियों ने, राज्य-कुटुम्बियों ने और जनता ने उनके भव्य स्वागत की तैयारियां कर डाली थीं। नगरी में से शृंगार किये हुए हाथी झूमते हुए राजा के स्वागत के लिए सामने से आ रहे थे। सहस्त्रों आदमियों के हाथ में पताकाएं लहरा रही थीं और बड़ी धूमधाम के साथ सभी स्वागत के लिए बढ़े चले आ रहे थे। बाजे-गाजे के साथ राजा विक्रम और राजकुमारी श्रीदेवी सम्मान-पूर्वक राजमहल में पधारे।

यहां पहुंचने पर श्रीदेवी को मालूम हुआ कि ओहो, यह तो कोई साधारण पुरुष नहीं हैं, बल्कि स्वयं उज्जैन के राजा विक्रम हैं।

श्रीदेवी के आनन्द का पार न था। उसकी आत्मा हर्ष से किलक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रही थी।

भक्त का रूप और वेश धारण करने वाली रानी चतुरा दूसरें रास्ते से घूमती हुई सुरंग द्वारा अपने उसी एक दंडिया महल में जा पहुंची और दासी द्वारा अपने सकुशल लौट आने की सारी सूचना अपने भाई को भिजवा दी। सूचना पाकर भाई के आनन्द का पार न रहा।

महल में पहुंचकर रानी चतुरा ने सारा वेश निकाल फेंका और अपने असली कपड़े पहन लिये। जब दासी भाई के यहां से लौट आई तो रानी चतुरा ने अपना गले का हार उतार कर दासी को पहना दिया। हार मिलते ही दासी का मन झूम उठा।

कुछ दूर बाद रानी ने पूछा, ''कहो दासी, राजा क्या कर रहे हैं? क्या स्वयंवर में से लौट आये?''

दासी बोली, ''हां रानी जी, कल ही लौटे हैं। राजकुमारी श्रीदेवी को स्वयंवर में से ब्याह लाये हैं। नई रानी रूप और सौन्दर्य का भंडार है। बाप रे, ऐसी रूपवती मैंने आज तक आंखों से नहीं देखी।''

रानी बोली, ''तू सच कहती है। ऐसा रूप है तभी तो स्वयंवर रचा गया था। अच्छा सुन तो, मेरा एक काम करेगी?''

दासी बोली, ''एक नहीं, दो कहिये, महारानीजी।''

रानी बोली, ''सुन तो मेरे लिए खाने का जो थाल लाये, उसे ऐसे ढंग से लाना कि राजा की नजर तुम पर पड़े बिना न रहे।''

दासी बोली, ''ऐसा ही होगा महारानी।''

दूसरे दिन दासी राज्य-रसोई से थाल तैयार करके दंडिया महल जाने के लिए तैयार हुई। थोड़ी देर में खाने के लिए आने की राजा की बाट जोहती खड़ी रही। जैसे ही राजा खाने के लिए पधारे उसी समय दासी थाल लेकर राजा के सामने निकली। राजा की नजर दासी पर पडी। मन-ही-मन उन्होंने सोचा कि यह थाल तो रानी चतुरा के लिए जा रहा है।

राजा को सहसा रानी चतुरा की याद सजीव हो उठी। उन्होंने सोचा—चलकर रानी की खबर तो लूं कि उसके क्या हाल हैं। इतने दिन बीत चुके—उसने दिन किस प्रकार गुजारे हैं? उसका अभिमान अभी उतरा है या नहीं—यह चल कर देखूं तो सही।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लेकिन सहसा इस विचार से कि रानी चतुरा के सम्मुख जाकर मैं क्या जवाब दे सकूंगा, उनका मन धंस-सा गया। रानी को जिस समय यह समाचार मिलेगा कि मैं नई रानी परण लाया हूं तो रानी चतुरा के मन को कितना भारी दुख पहुंचेगा। राजा विक्रम का हृदय इस विचार से डांवाडोल हो उठा।

कुछ देर विचारों में डूबते-उतराते रहने के पश्चात राजा विक्रम ने आखिर निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी हो वह रानी चतुरा से जाकर अवश्य मिलेगा। ऐसा निश्चय करने के पश्चात ही राजा रात को सो सके।

10

सुबह होने पर राजा उठे।

राजा स्वयंवर में से श्रीदेवी को परण लाये थे। इसी कारण भारी धूमधाम मची हुई थी। कितने ही लोग तरह-तरह की भेंट ले-ले कर आ रहे थे।

राजा को रानी चतुरा की फिर से याद ताजा हो उठी।

ओहो, ऐसे शुभ और आनन्द के दिन भी रानी चतुरा एक दंडिया महल में रह रही है। चलो, उसे ले आओ। चलकर पूछो तो सही कि वह कैसी है, क्या हाल हैं उसके और क्या कर रही है वह?

यह विचार कर राजा विक्रम वहां से उठकर चल दिये और सीधे वह दंडिया महल जा पहुंचे। खट्-खट् करते हुए वह महल की सीढ़ियां चढ़ने लगे। रानी चतुरा समझ गई कि राजा पधारे हैं। उनके अतिरिक्त यहां आ ही कौन सकता है? वह एकदम उठ खड़ी हुई।

राजा को देखते ही रानी बोल उठी, ''पधारिए, महाराज, आज क्या उलटी दिशा से सूर्य उगा है? आप सकुशल तो हैं?''

राजा बोले, ''हां, मैं तो सकुशल हूं परन्तु तुम्हारी तबियत कैसी है? यह जानने के लिए आया हूं।''

रानी ने कहा, ''मेरी तबियत तो वैसी की वैसी है, कोई नवीन बात नहीं है। मैंने सुना है कि आप तो कहीं गांव गये हुए थे। कहां-कहां हो आये?''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रानी ने पूछा, ''तुम्हें किसने कहा कि मैं बाहर गांव गया हुआ था?''

रानी बोली, ''कहने को मेरे पास है ही कौन? वही एक दासी है, जो आपकी खबर मुझ तक और मेरी खबर आपको पहुंचाती है।''

राजा विवश हो बोले, ''हां, कोसाम्बी के राजा के यहां स्वयंवर था उसमें शामिल होने गया था।''

रानी ने कहा, ''नई रानी परण लाये?''

राजा ने कहा, ''हां, यदि तुम बाहर चलना चाहती हो तो चलो मेरे साथ।''

रानी ने उत्तर दिया, ''नहीं, मुझे तो अपनी चतुराई से बाहर निकलना है, आपकी दया से नहीं।''

राजा बोले, ''यदि ऐसा है तो अपनी चतुराई दिखा डालो। यदि ऐसा नहीं कर सकतीं तो तुम्हें मुझसे माफी मांगनी पड़ेगी।''

रानी बोली, ''आप मेरी चतुराई नहीं समझ सकते। मैं आपसे पूछती हूं कि आप कोसाम्बी अकेले ही गये थे या अन्य कोई और भी आपके साथ था?''

राजा झट से बोले, ''मैं तो अकेले ही गया था। कोई भी जानता तक नहीं कि मैं स्वयंवर में गया था और वहां से लौट कर आया हूं।''

रानी बोली, ''ऐसी बात है? क्या आपके साथ कोई भक्त नहीं था? वह भक्त अब कहां चला गया? उस भक्त ने आप पर इतने बड़े-बड़े उपकार किये फिर भी आपने उसे एक दिन के लिये भी यहां नहीं रोका?''

राजा एकदम अजनबी-से बन गये मानो कुछ जानते ही न हों। मन-ही-मन वह सोचने लगे कि इस एक दंडिया महल में बंद इस रानी को भक्त की बात किस तरह मालूम हो गई? वह प्रकट में बोले, ''नहीं, नहीं, मेरे साथ कोई भक्त-वक्त नहीं था। तुम्हें ये सब बातें किसने कहीं? ये सब बातें निराधार और झूठी हैं। इनमें कोई तथ्य नहीं।''

रानी बोली, ''राजन, आप मुझे चकमा देने की कोशिश तो नहीं कर रहे न? देखो, राजन, कुछ याद करने की कोशिश करो। क्या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आपने भक्त के पैरों का धोया हुआ पानी नहीं पिया? कहो कि यह बात झूठी है? और क्या यह बात भी झूठ है कि आपने राजकुमारी श्रीदेवी को वरा तो अवश्य है पर यदि आपकी सहायता भक्त नहीं करता तो भी क्या आप सफल हो जाते? क्या आप राजकुमारी को वर सकते थे?''

राजा बात सुनते गये और अचम्भे में डूबते गये। भक्त और उनके स्वयं के सिवा जो बात तीसरा कोई नहीं जानता था, वही बात रानी कैसे जान गई? इस रहस्य का भेद राजा को पता नहीं लग रहा था। रानी चतुरा को ये सब बातें कहने वाला कौन हो सकता है? कुछ देर वह इसी प्रकार सोचते रहे और फिर बोले, ''रानी, जो भी बातें तुमने कही हैं वो तुम्हें किसने बताई हैं? फिर कहता हूं कि मैं किसी भक्त को जानता तक नहीं।''

रानी बोली, ''राजन, मुझे किसी ने कोई बात नहीं कही। आपके साथ जो भक्त था उसके अतिरिक्त और कोई तीसरा नहीं था। यह मैं स्वीकार करती हूं। पर सुनिये, वह भक्त मैं ही थी। अब कहो, आपके पास और कुछ कहने को शेष रह गया है? क्या आपको कोई और चतुराई परखनी है?''

राजा विक्रम रानी की बात सुनकर दंग रह गये। कुछ देर बाद लजाते हुए बोले, ''क्या सच कह रही हो कि भक्त के वेश और रूप में तुम स्वयं थीं।''

रानी मुसकराते हुए बोली, ''मेरे चेहरे की ओर देखो और बताओ कि मेरा चेहरा उस भक्त से मिलता-जुलता है या नहीं? राजकुमारी श्रीदेवी को आप वरने के लिए अवश्य गये थे पर यह भक्त आपके साथ न होता तो आपको वापस मुंह लटकाये लौटना पड़ता। याद करो पानी का घड़ा किसने भरवाया था? घोड़े को वश में करने की करामात किसने बताई थी? कैरी को तीर से बींधने का गुर आपको किसने बताया था? सच बताओ, राजन! क्या आपको यह सारी बातें याद आ रही हैं या आप इन्हें भूल गये?''

राजा बातें सुनते गये और उनके हृदय में विश्वास जमता चला गया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कि वास्तव में मेरी ही यह रानी भक्त के रूप में मेरी कठिन-से-कठिन परीक्षा में सहायता करती रही। इससे दूसरा और कोई भक्त नहीं हो सकता। क्योंकि भक्त के सिवा ये सारी बातें कोई जान भी नहीं सकता था।

राजा के मन में रानी के प्रति अपार ममता जाग उठी। उनके मुंह से सहसा निकला, ''रानी, मुझे माफ कर दो। मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिये हैं। राजकुमारी श्रीदेवी तुमने ही मुझको परण कर दी है। सारा श्रेय तुम्हें ही जाता है। जीवन-भर मैं तुम्हारा आभार कभी चाह कर भी नहीं भूलूंगा।''

थोड़ी देर बाद राजा विक्रम सगर्व और प्रेमपूर्वक रानी चतुरा को अपने साथ लेकर महलों की ओर चल दिये। रानी चतुरा की बुद्धि के सामने राजा विक्रम अपनेआप को पराजित-सा अनुभव कर रहे थे। वह मन-ही-मन बोल उठे—वाह-वाह, रानी! जैसाकि कहती थी कि बुद्धि किसी के बाप की नहीं होती, वही उसने सिद्ध करके दिखा दिया।

राजा महल में आते ही श्रीदेवी के पास पहुंचे। वहां पहुंच कर उन्होंने श्रीदेवी का परिचय रानी से करवाया। श्रीदेवी अपनी बड़ी बहन के पैर पड़ी और रानी चतुरा का आभार स्वीकार किया।

उस दिन के बाद राजा, रानी और श्रीदेवी तीनों-के-तीनों खुशी से रहने लगे और मौज से खाने-पीने लगे। तीनों के ही हर्ष का पार न था।

श्रीदेवी को छोड़ने आया हुआ रथ वापस कोसाम्बी भेज दिया गया था। रथ के सारथी से ही श्रीदेवी के माता-पिता ने जाना कि श्रीदेवी को वरने वाला कोई और नहीं स्वयं राजा वीर विक्रम ही थे। यह जानते ही उनकी खुशी का पार न रहा।

राजा विक्रम के मन में बस एक ही बात खटकती रही कि रानी चतुरा ने उन्हें कितनी बुरी तरह पराजित किया है!

भक्त बनकर रानी चतुरा ने कुछ ऐसा कार्य किया था कि राजा उसके सामने कभी अपनी डींग नहीं हांक सकते थे। रह-रहकर उनके मन में इसी लिए केवल एक ही विचार उठता रहता था कि किस प्रकार रानी चतुरा को मात दें। यदि ऐसा कर सके तो ही उनका नाम वीर विक्रम है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दूसरा भाग

1

राजा विक्रम उज्जैन नगरी का राज-पाट बड़े ही कुशल ढंग और रीति से चला रहे थे। उनकी प्रजा सुखी है या दुखी, यह देखने के लिए वह रोज रात में वेश बदल कर नगर में घूमा करते थे। वह प्रजा की बातें सुनते थे और उनके हृदय का सुख या दुख का पता लगा लेते थे। जान चुकने के पश्चात वह वैसा ही उपाय करते थे, जिससे लोगों के दुख दूर हो सके और उन्हें तुरन्त किसी-न-किसी प्रकार से सुख प्राप्त हो सके।

मालवा देश की प्रजा नाना प्रकार से सुखी थी। यही कारण था कि देश और प्रदेश में राजा के नाम की खूब ख्याति फैली हुई थी। प्रायः लोग यही कहा करते थे कि राज्य हो तो उज्जैन नगरी जैसा और राजा हो तो वीर विक्रम जैसा।

रानी चतुरा की बुद्धि का राजा विक्रम राज्य कार्य में बहुत ही सुचारु ढंग से उपयोग में ला रहे थे। रानी स्वयं राजकाज में राजा की बड़ी ही सहायता करती थी। यही कारण था कि लोग आपस में बातें किया करते थे कि राजा रानी की बुद्धि पर चलते हैं।

अनेक अवसरों पर राजा रानी की चतुराई और बुद्धि-प्रखरता पर मन-ही-मन दंग रह जाते थे। जहां राजा को कोई उपाय नहीं सूझता था और वह निराश हो उठते थे वहीं रानी तत्काल कठिन-से-कठिन समस्या का हल ढूंढ़ निकाल लेती थी। जैसे ही समस्या का हल हो जाता वैसे ही राजा के मन से यही निकलता—'वाह-वाह, धन्य है रानी की बुद्धि को।'

इस प्रकार दोनों मिलकर, परस्पर के सहयोग से उज्जैन नगरी का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राज्य चला रहे थे। यही कारण था कि वह दोनों प्रजा के बहुत प्रिय हो गये थे। उन्हें प्रजा बहुत प्यार करती थी और चाहती भी थी। पर रानी चतुरा का मान दिन-प्रतिदिन लोगों के हृदय में बढ़ता जा रहा था और यही एक बात राजा के मन में खटकती रहती थी। लोगों का यह मत जानकर कि रानी चतुरा के पीछे ही राज्य-कार्य चलता है—राजा विक्रम कुछ कुंठित-से हो जाते थे। लोगों की इस भावना को राजा बदल सके, ऐसा कोई अवसर और उपाय उन्हें ढूंढ़ने पर भी मिलता नहीं था।

एक दिन की बात है, राजा और रानी बड़े ही प्रसन्नचित्त बैठे हुए थे। बैठे-बैठे इधर-उधर की बहुत-सी बातें कर रहे थे। देश-देश की बातें हो रही थीं। दोनों-के-दोनों गप्पें हांक रहे थे और हँसी-मजाक चल रहा था। सहसा राजा को एक दांव मिल गया। बातों में से ही बात निकल पड़ी। साधारण-सी बात को भी इतना महत्त्व दे दे और अपनी बात को छोड़े नहीं—इसी का नाम राजा होता है। इसलिए बातों के ढेर में से ही उन्हें एक बात मिल गई थी जिसे मन-ही-मन बहुत महत्त्व देते हुए उन्होंने कहा, ''सुनो रानी, अपनी उज्जैन नगरी की शोभा का कोई पार नहीं, परन्तु एक बात की कमी जरूर है। यदि हम इस नगरी के चारों ओर एक ऊंचा परकोट चुनवा दें तो हमारी नगरी कितनी सुन्दर बन जाये! आज मैंने फिरते-फिरते लोगों के मुंह से यही सुना है कि नगरी के परकोट नहीं है। राजा लोभी है तभी तो परकोट नहीं बनवाना चाहता।''

रानी बोली, ''बात तो सही है। सुन्दर भी है। हमारी उज्जैन नगरी के चारों ओर परकोट होना भी चाहिए। परकोट खींचने के बाद वास्तव में इस नगरी की शोभा देखते ही बनेगी। चोर और लुटेरों का भय भी नहीं रहेगा। दुश्मनों से डरने की आवश्यकता भी नहीं होगी। परकोट बहुत सारे काम आयेगा। आप फिर परकोट चुनवा क्यों नहीं देते?''

रानी चतुरा बात को साधारण समझ रही थी और हां में हां भरे जाती थी। राजा के स्वर में स्वर मिलाती जा रही थी। परन्तु राजा के मन में कुछ और ही बात थी, जो रानी के ध्यान में नहीं थी। राजा विक्रम ने रानी चतुरा की बुद्धि की परीक्षा लेने की खातिर ही यह बात छेड़ी थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मन-ही-मन राजा को रानी की चतुराई बड़ी ही प्रिय लगती थी। वह उस पर गर्व भी करते थे। रानी उन्हें बहुत प्रिय थी। पर इसके साथ-ही-साथ उन्हें मन-ही-मन इस बात का डर भी था कि रानी अपनी चतुराई के कारण अधिक लोकप्रिय होती जा रही हैं। यदि ऐसा ही रहा तो वह उनकी अपेक्षा प्रसिद्धि में कहीं ज्यादा बढ़-चढ़ जायेगी।

राजा बोले, ''रानी, हमें परकोट तो अवश्य खिंचवाना है पर ऐसा नहीं जैसा कि औरों ने चुनवाया हो; हमें ऐसा परकोट चुनवाना है जैसा आज़ तक कहीं नहीं चुनवाया गया हो। और जिससे हमारा नाम सदा के लिए अमर रहे। मैं विचित्र तरह का और अनोखा परकोट चुनवाना चाहता हूं।''

रानी बोली, ''हां, ऐसा ही बनवाना भी चाहिए। राजा वीर विक्रम जैसा राजा और उज्जैन जैसी नगरी, इसे देखते हुए परकोट तो एक अनोखे ही ढंग का होना चाहिए। कुछ इस प्रकार का परकोट होना चाहिए जैसा आज तक कहीं नहीं बांधा गया हो। जो भी देखे, देखने वाले के मुंह से यही निकले कि परकोट तो बहुत देखे पर राजा विक्रम और उज्जैन नगर का सा परकोट कहीं नहीं देखा।''

राजा बोले, ''तुम ठीक कहती हो रानी। मेरी भी बस यही इच्छा है कि परकोट बने तो वाकई ऐसा, जैसा कि आज तक किसी ने नहीं बनवाया हो। उस परकोट की चुनवाई भी इस रीति और ढंग की होनी चाहिए जैसी आज तक कहीं नहीं हुई हो।''

रानी बोली, ''पर मुझे यह समझाइए कि आप ऐसी कौन-सी रीति का और किस ढंग का परकोट बनवाना चाहते हैं? बहुतों ने परकोट बनवाये हैं, पर आप उनसे पृथक् और किस तरहं का परकोट बनवाने की इच्छा रखते हैं।''

राजा बोले, ''मेरी इच्छा है कि दुनिया हमारे उस परकोट को देखकर दंग रह जाए। जो भी उसे देखे उसके मुंह से बरबस यही निकल पड़े कि राजा विक्रम जैसा बनवाया हुआ परकोट कोई नहीं बंधवा सकता। मैं ऐसा अजीब और अद्‌भुत और अनोखे ढंग का परकोट बनवाना चाहता हूं।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रानी बोली, "इस तरह का कैसा परकोट आप बनवाना चाहते हैं? मुझे कुछ समझाइए तो सही ताकि मैं जान सकूं कि वह किस प्रकार का होगा।"

रानी तो ये सब बातें सरल भाव से कह रही थी। वह समझती थी कि राजा जो कुछ कह रहे हैं, सच ही कह रहे हैं। उन्होंने राजा की इन बातों को सच समझा, परन्तु वह राजा के मन को परख नहीं सकी। राजा का विचार दूसरा ही था। राजा कह कुछ रहे थे और उनके भीतर मन में कुछ और था। उन्होंने मन-ही-मन आज निश्चय कर लिया था कि रानी चतुरा की चतुराई के मामले में किसी तरह वह उसे नीचा दिखा कर रहें।

राजा बोले, "रानी मेरी, देखो मैं कल नगर के समस्त कारीगरों, मजदूरों, मिस्त्रियों, सिलावटों इत्यादि को बुलाऊंगा। किस तरह का परकोट चुनवाना है यह तुम्हें बताना होगा। तुम उस समय मेरे साथ ही रहोगी। जो कुछ सलाह उन लोगों को देनी हो या जो सुझाव देना चाहो वह उसी समय देना।"

रानी बोली, "यह तो ठीक है, पर आपने किस तरह का परकोट चुनवाने का मन में निश्चय किया है, यह मुझे आज ही बताओगे तो मैं कल कोई सलाह दे सकूंगी।"

राजा बोले, "नहीं, अभी नहीं बताऊंगा। कल कारीगरों के सामने ही कहूंगा। कल तुम स्वयं सुन लेना।"

इस तरह बातें करते-करते राजा और रानी महलों में चले गये।

राजा ने अपने मंत्री को बुलवाया और हुक्म दिया कि फौरन यह एलान कर दो कि शहर के सारे कारीगर, सिलावट इत्यादि कल दरबार में हाजिर हो जायें। सब को समय पर उपस्थित हो जाना चाहिए।

मंत्री ने ढिंढोरा पिटवा दिया, "नगर के तमाम कारीगर, मिस्त्री, सिलावट इत्यादि कल दरबार में हाजिर हो जाएं।"

यह ढिंढोरा सुनते ही चारों ओर सरगर्मी-सी फैल गई। दूसरे दिन शहर के समस्त मजदूर कारीगर, मिस्त्री, सिलावट इत्यादि दरबार में हाजिर हो गये। कोई बाकी न रहा। क्या बात है, यह कोई नहीं जानता था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सब-के-सब जानने को उत्सुक थे। मन-ही-मन कुछ घबरा-से रहे थे। इतना वह जरूर जान गये थे कि हो न हो, कोई नई बात है। राजा का हुक्म था इसलिए सब-को मानना पड़ा। इसी लिए वह सबके सब आकर हाजिर हो गये थे। किसकी मजाल थी जो राजा के हुक्म को टालता?

2

ठसाठस सभा भरी थी। नगर के लोगों ने जैसे ही यह ढिंढोरा सुना तो उन्होंने सोचा कि राज्य सभा में आज जरूर कोई अनोखी बात होने को है। इसलिए बहुत-से लोग उत्सुक होकर दरबार में एकत्र हो गये थे। यहां तक कि वृद्ध, लूले, लंगड़े, अपाहिज और कुछ पागल भी चले आये थे।

राजा ने सब को जाहिर करते हुए कहा, ''आज की इस सभा को देखकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ है। आज की सभा जैसी भरपूर है वैसी ही आज की बात है। हमें एक ऐसा परकोट बंधवाना है जैसा आज तक न तो किसी ने बंधवाया हो और न जैसा किसी ने आंख से देखा ही हो। ऐसा परकोट बांधने के लिए तुम में से कौन-सा कारीगर या मिस्तरी है वह सामने आये।''

कारीगर और मिस्तरी बात सुनकर एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। अब कौन कहे कि मैं ऐसा परकोट बांध सकता हूं? कौन सब से पहले उठे और उठकर इस चुनौती को स्वीकार कर सके? वे सब यह जानते थे कि कोई विशेष नये ढंग का परकोट बंधवाना है। ऐसे नए प्रकार का परकोट यदि नहीं बंध सका तो सारी आबरू चली जायेगी। इस डर से कोई भी कारीगर या मिस्तरी आगे बढ़ने को तैयार नहीं था। थोड़ा समय गुजर गया। सन्नाटा-सा छाया रहा, पर सभा में से कोई उठा कर खड़ा नहीं हुआ।

राजा बोले, ''क्या बात है, अपनी उज्जैन नगरी में इतने बड़े-बड़े कारीगर और मिस्तरी मौजूद हैं, फिर भी कोई आगे नहीं आ रहा? सब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चुप क्यों हैं?''

कारीगर और मिस्तरी आपस में कानाफूसी करने लगे। एक बोला, ''तू खड़ा हो। तू ही हमारी बिरादरी का अगुआ है, चौधरी है।''

दूसरा बोला, ''तू खड़ा हो।''

तीसरा बोला, ''तू हो।''

इस तरह आपस में घुसपुस चलती रही पर कोई खड़ा न हुआ।

राजा विक्रम बोले, ''इतनी देर हो गई, फिर भी अब तक कोई खड़ा न हुआ? क्या कारण है? जो भी अगुआ हो, वही खड़ा हो जाये। यदि तुम्हें यह डर हो कि पता नहीं राजा किस तरह का परकोट चुनवाने को कहेंगे तो इसमें तुम्हें डरने की कोई बात नहीं है। इस संबंध में रानी साहिबा तुम्हारी मदद करेंगी।'' यह कह राजा विक्रम ने रानी चतुरा की ओर देखा।

रानी सहसा मन में चौंकी, 'यह कैसी बात है? राजा ने अचानक मेरा नाम कैसे ले लिया? राजा ऐसे ही खाली-पीली बात तो नहीं कहते। अवश्य कोई भेद है। कल मैंने जब यही परकोट खिंचवाने की बात चलाई थी उस समय तो इन्होंने मुझे कुछ नहीं बताया और अब एकाएक सभा में मुझे आगे धकेल दिया। निश्चय ही कोई भेद की बात होनी चाहिए। पर बिना एकदम बात जाने, उनके हृदय की बात जाने कुछ भी मुंह में कह देना ठीक न होगा, इसी-सोच विचारों में रानी चतुरा कुछ देर डूबी रही और कुछ न बोली।

कुछ देर बाद राजा फिर बोले, ''आप सब लोगों की रानी साहिबा बहुत चतुर हैं और विदुषी हैं। इतनी चतुर हैं कि स्वयं चाहे कुछ न करें पर उपाय तुम्हें अवश्य बता सकती हैं। आप सब लोगों को चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम लोगों में से किसी एक को खड़ा हो जाना चाहिए। हां, इतना जरूर है कि तुममें जो भी अगुआ हो– वही खड़ा हो।''

रानी तुरन्त समझ गई कि राजा ने उसे हराने के लिए ही यह दांव खेला है। यदि उनकी यही इच्छा है तो ठीक है। रानी ने मन में कहा, 'मुझे राजा की यह बात स्वीकार है। राजा आज फिर देख लें कि बुद्धि वास्तव में किसी के बाप की बपौती नहीं होती। यदि इस होड़ में मैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हार भी जाऊं तो मुझे चिंता नहीं।'

राजा बोले, "बोलो, आगे कौन आना चाहता है?"

रानी चतुरा बोली, "राजन, बेचारे कारीगरों को क्यों नाहक परेशान कर रहे हो? आपके जो मन में हों उसे साफ कह दो। आप जैसा भी परकोट बंधवाने की इच्छा रखते हों वैसा ही परकोट मैं बंधवा कर आपको दिखा दूंगी।"

राजा क्षण-भर के लिए चकित रह गये। वह मन-ही-मन सोचने लगे, 'रानी कैसी बात कह रही है! जैसा परकोट मुझे बंधवाना हो वैसा ही बांध कर दिखा देगी।'

वह बोले, "आप तो राजमहलों की महारानी हो। आप इन कारीगरों और मिस्त्रियों के काम को क्या जानो?" रानी बोली, "ऐसा है महाराज कि चतुराई और बुद्धि के आगे कोई काम असम्भव नहीं हुआ करता। आप केवल इतना बताएं कि मुझे इस प्रकार का कोट बनवाना है!"

राजा बोला, "देखो रानी, एक बार फिर सोच लो।"

रानी बोली, "सोचने की कोई जरूरत नहीं है। मैंने सब-कुछ सोच लिया है।"

भरी-पुरी सभा में राजा व रानी के बीच बात सहसा ठन-सी गई।

सारी सभा विचार में पड़ गई। जितने राजा चतुर थे उससे भी बढ़कर रानी चतुर थी। सब-के-सब आदमी हक्के-बक्के थे कि राजा व रानी की इस पारस्परिक होड़ में क्या परिणाम निकलेगा? सब-के मन में यही उथल-पुथल मची हुई थी।

कारीगर, सिलावट और मिस्तरी सभी मौन-मूक बैठे थे। कोई आगे नहीं आ रहा था। राजा रह-रह कर रानी को ही आगे कर रहे थे। कारीगर और मिस्तरी परेशान थे कि अब किस का पक्ष लिया जाए, राजा का या रानी का? वे सब विचित्र सी उलझन में फंस गए थे—यदि इधर का पक्ष लेते हैं तो कुआं है, और उधर का पक्ष लेते हैं तो खाई।

राजा ने हिम्मत बंधाते हुए और पुनः ललकारते हुए कहा, "तुम में से कोई भी खड़ा हो जाए।"

आखिर एक आदमी किसी प्रकार उठ खड़ा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जो आदमी उठा था उसे स्वयं पर भरोसा था। वह सब से आगे आया और बोला, ''महाराज, आप तो हमारे अन्नदाता हैं, हमारे पालक हैं। पर मैं आपके पैर छूकर कहता हूं कि जो भी रानी कह देगी, वही हमारे सिर-आंखों पर और जो भी आप कह देंगे वह भी हमारे सिर-आंखों पर। जैसा भी आप परकोट चुनवाना चाहते हैं, वैसा ही मैं चुन दूंगा।''

राजा खुशी में भरकर बोले, ''वाह! वाह! तुमने कितनी सुन्दर बात कही है।''

राजा ने तब रानी को संबोधित करते हुए कहा, ''रानी अब तुम बताओ कि हमें किस प्रकार का परकोट चुनवाना है।''

रानी बोली, ''जैसा भी परकोट चुनवाना है वैसा आप मुझे बताइए। कई बार मैं पूछ भी चुकी हूं कि आपकी किस प्रकार का परकोट बनवाने की इच्छा है। आप बोलिए, उसे बनवाने की जिम्मेदारी मेरी है।''

राजा बोले, ''यह तो कुछ बात हुई। लेकिन मैं जैसा कहूं वैसा कोई यदि नहीं बनाया गया तो?''

रानी बोली, ''ठीक है। यदि मैं बनवा सकी तो चुनवा दूंगी और यदि ऐसा नहीं हो सका तो जैसी आपकी इच्छा हो वैसा ही करना।''

राजा कहने लगे, ''तो सुनो रानी, यदि तुम मेरी इच्छा के अनुसार परकोट नहीं चुनवा सकीं तो इन समस्त कारीगरों, मिस्तरियों, सिलावटों इत्यादि को देश-निकाला दे दिया जायेगा; ताकि उन्हें शिक्षा मिल सके। यदि तुम में इतना साहस हो तो मेरी इस चुनौती को स्वीकार करना, नहीं तो अभी न कर देना।''

राजा और रानी इस परस्पर के विवाद में गुंथ-से गये। उधर सारी सभा सांस रोके बैठी रही। चारों ओर ऐसी शान्ति छा गई कि थोड़ी-सी भी पवन चले तो उसकी फरफराहट सुनाई दे सके। पर इस शान्ति के ओर-छोर एक बड़ी भारी उलझन भी बंधी हुई थी। पर सब-के-सब हतप्रभ-से बैठे थे। सभी यह बात जानने को उत्सुक थे कि राजा और रानी की इस आपस की नोक-झोंक का आखिर क्या परिणाम निकलेगा! यही सब को चिन्ता पड़ी हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सब-के-सब स्तब्ध बैठे थे। सब-की हार्दिक इच्छा यही थी कि कोई अच्छा परिणाम निकले।

रानी एकाएक बोली, ''मुझे स्वीकार है।''

कारीगर भी आगे बढ़कर बोला, ''स्वीकार है, महाराज! आपके समस्त बोल हमारे सिरमाथे पर। जैसी रानी माता की इच्छा होगी, वही हमें स्वीकार है।''

राजा बोले, ''देखो, देखो, उतावलापन न करो। अपनी रानी माता पर भी इतना अधिक विश्वास मत रखो।''

रानी बोली, ''आप चिन्ता न करिए महाराज! मुझ पर भरोसा रखने का प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है कि यदि उज्जैन नगरी का किसी प्रकार भला होता हो तो उसी में हमारा भी भला है।''

रानी ने उस अगुआ कारीगर और चतुरा की ओर देखा। उन्हें डराने की चेष्टा की, पर कुछ बना नहीं। यह देख राजा बोले, ''सारी सभा सुन लो कि उज्जैन नगरी का परकोट किले की तरह मजबूत होना चाहिए, जिसे देखकर आप और हम सभी खुश हो उठें और गर्व कर सकें। मेरा विचार ऐसा है कि परकोट जो बने वह कुछ इस प्रकार का हो कि उसे देखकर दुनिया के सारे लोग दंग रह जायें।''

रानी बोली, ''परकोट आपकी बुद्धि और इच्छा के अनुसार ही बनेगा। ऐसा ही सुन्दर बनेगा जैसाकि आप चाहते हैं। पर आपको यह बताना होगा कि किस प्रकार का परकोट आप चुनवाना चाहते हैं?''

राजा बोले, ''देखो, पहले ऊपर से कंगारे चुनने होंगे और बाद में परकोट बनेगा। यदि यह कर सको तो मैं जानूं।''

राजा वीर विक्रम की यह बात सुनकर नगर के समस्त आदमी, कारीगर, मिस्तरी और रानी गूंगे-से बैठे रहे। कारीगर और मिस्तरी आपस में घुसपुस करने लगे—'कैसी विचित्र बात है! पहले कंगारे और बाद में कोट यह कैसे हो सकता है? इस तरह का परकोट किस रीति से चुना जा सकता है? कंगारे कोट के माथे पर होते हैं। कंगारों को पहले कैसे बनाया जा सकता है?'

रानी मन-ही-मन हँसी—'वाह, राजा ने यह खूब सोचकर नई बात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

निकाली है!'

एक कारीगर खड़ा हुआ और बोला, "महाराज, इस तरह का परकोट किस रीति से चुना जा सकता है? आप जैसा चाहें वैसा कारीगरी का काम, आप चाहे वैसा ड्योढ़ी वाला, आप चाहें तो कंगारों के साथ दरवाजे वाला परकोट हम चुनकर दिखा दें पर आप जैसा परकोट चाहते हैं वैसा हम किस रीति से बना सकते हैं?"

क्षण-भर राजा यह सब बात सुनते रहे पर कुछ नहीं बोले।

मुखिया कारीगर बोला, "महाराजा, आप हमें कहें तो द्वारका में जरासंध के लिए जो परकोट कृष्ण भगवान ने बंधवाया था वैसा परकोट हम बांध दें, लंका नगरी के राजा रावण ने जैसा परकोट बंधवाया था वैसा ही हम बांध दें—यह बात तो कुछ समझ में आ सकती है और दूसरे भी समझ सकते हैं, किन्तु कंगारे आकाश में अधर बंधवाने की यह आपकी कौन-सी रीति है? इस प्रकार परकोट आखिर किस तरह चुना जा सकता है? हमारे तो यह बात कुछ समझ में नहीं आती। यह तो मजाक की-सी बात जान पड़ती है। यदि आपको वास्तव में परकोट ही बंधवाना होता तो आप ऐसी बात नहीं कहते!"

राजा बोले, "मैंने तुम्हारी बात सुन ली है। मैं तुम में से किसी को कुछ नहीं कहूंगा, पर जो कुछ कहना चाहता हूं वह जरा ध्यान से सुनो।"

सभी में सन्नाटा-सा छा गया। सब-के-सब शान्त बैठे रह गये।

राजा बोले, "भाइयो, ऐसा मालूम होता है कि मेरी बात तुम्हारे दिमाग में नहीं उतरी। मेरी बात अक्ल की है। अक्ल ही से यह काम पूरा हो सकता है। मैं कोई मजाक या दिल्लगी नहीं कर रहा। जो कुछ बात मैंने कही है, सोच-समझ कर ही कही है। यदि यह काम तुम कर सकते हो तो 'हां' कहो वरना 'न' कह दो या फिर रानी जी की सलाह लो।"

मिस्तरी, कारीगर और सिलावट रानी जी का मुंह ताकने लगे। पूरी की पूरी सभा एक तरह से सोच में पड़ गई कि रानी जी रीति से इस समस्या का हल निकाल पायेंगी! इस तरह से उत्सुकता से भरे वह एकटक रानी की ओर अधीर हो देखने लगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रानी चतुरा खामोश बैठी थीं। उनके मुंह से दो शब्द सुनने के लिए बहुत-से लोग अधीर हो रहे थे और अनेक धीमे-धीमे हँस रहे थे। बाकी लोग गूंगे से-बैठे हुए थे।

थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा और कोई किसी से नहीं बोला। इतने में राजा बोले, ''यदि तुम में से कोई भी यह काम पूरा न कर सके तो तुम तीन दिन तक और सोच लो, मैं तुम्हें सोचने का अवसर देता हूं। चौथे दिन इस बारे में सभा में आकर तुम्हें अपने हां या नहीं का उत्तर दे देना है। यदि मुझे 'न' का उत्तर मिला तो मैं समझूंगा कि तुम रानी-सहित हार गये हो और शर्त के अनुसार मुझे तुम्हें सजा देनी होगी।''

यह कह राजा ने सबको जाने की आज्ञा दे दी। सभा बिखर गई। विचित्र-विचित्र बातें करते हुए और कई तर्क-वितर्क करते हुए लोग वहां से चल दिये।

रास्ते में लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। एक कह रहा था, ''क्या करें, इन राजा लोगों को कोई समझ नहीं है। सदा अपनी मनचाही-ही करते हैं।''

दूसरा बोला, ''पर जैसा राजा, वैसी ही रानी। ये तो एक-दूसरे को हराने का दांव देखने में लगे हुए हैं, मुसीबत अपनी है।''

तीसरा बोला, ''ये लोग प्रजा को छकाने और मनोरंजन की बातें करने की यदि ठान लें तो हमें मार ही डालें। इन राजाओं की यही प्रथा है। इनका कोई भरोसा नहीं है।''

इस प्रकार कारीगर और मिस्तरी आपस में बातें कर रहे थे। प्रायः सब का यही विचार था कि राजा तो लोगों को पागल और मूर्ख बना रहे हैं। जो कार्य नहीं हो सके और असंभव हो—ऐसी बात कर रहे हैं। इन्हे कोट--वोट कुछ नहीं बंधवाना। ये सब बेकार की बातें हैं। यह तो केवल रानी को हराने की योजना बनाये हुए हैं और चाहते हैं कि रानी हार जाए। इस तरह भिन्न-भिन्न बातें करते हुए और हवा में घोड़े दौड़ाते हुए आपस में हँसते हुए वह अपने घर पहुंचे।

संध्या होते ही सब-के-सब कारीगर, मिस्तरी और सिलावट मुखिया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कारीगर के घर जा पहुंचे। वहां समस्त उज्जैन नगरी के कारीगर, मिस्तरी, शिल्पी इत्यादि एकत्रित हो गये थे। उन सब ने एक ही बात कही— राजा जिस रीति से कोट चुनवाना चाहते हैं उस रीति से वह नहीं चुना जा सकता। यह तो राजा हमें केवल दंडित करने की बात कर रहे हैं।

सब ने एक मत होकर यही निश्चय किया कि हम सब चलकर राजा से साफ-साफ कह दें कि इस रीति से परकोट चुना नहीं जा सकता। आप चाहें तो हमें देश-निकाला दे दें या फांसी पर चढ़ा दें।

एक उनमें से खड़ा हुआ और दृढ़ स्वर में बोला, ''भाइयो तुम समझते नहीं। यह कोई कोट या कंगारे की बात नहीं है। यह तो राजा और रानी का एक मनोविनोद है। राजा किसी प्रकार रानी को परास्त करने पर तुले हुए हैं, ऐसा लगता है। अपनी रानी जैसी चतुर कहीं नहीं है। रानी इस समस्या का हल किस तरह निकाल सकती हैं, यही परखने को राजा विक्रम ने यह सब लीला रची है। इसलिए हम सब को रानी जी के पास चलकर उनकी सलाह लेनी चाहिए। उसके बाद ही फिर हमें राजा को उत्तर देना चाहिए।''

रानी चतुरा की सलाह लेने के लिए जाने का सभी कारीगरों और मिस्तरियों ने निश्चय कर लिया। उन्होंने अपने पांच खास-खास मुखियाओं को रानी के पास भेजने के लिए छांट लिया।

थोड़ी देर बाद यह पांच मुखिये रानी चतुरा के पास पहुंचे। रानी ने सब को बहुत प्यार से बिठाया और उनका सत्कार किया, बैठने को आसन दिया और फिर कहा, ''आप लोग किस लिए आये हैं, यह मैं जानती हूं।''

एक ने विनीत स्वर में कहा, ''ऐसा है रानी जी कि राजा जी का यह हठ व्यर्थ है, बेकार है। कंगारे पहले और कोट बाद में यह किस रीति से हो सकता है? पायों के वगैर दीवार किस प्रकार खड़ी रह सकती है? हमें तो राजा जी देश-निकाला दे देंगे।''

रानी बोली ''तुम चिन्ता न करो। तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा।''

कारीगर बोले, ''कैसे नहीं बिगड़ेगा, महारानी जी?''

रानी चतुरा बोली, ''मैं तुम्हें सब को यही सलाह देती हूं कि तुम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा के पास जाकर यही एक बात कहना कि इस तरह का परकोट हमसे नहीं बंध सकता। राजा जी को स्वीकार करना पड़ेगा कि बात निराधार है और आखिर परिणाम यह होगा कि राजाजी हठ छोड़ देंगे।''

कारीगर बोले, ''राजा जी कभी नहीं मानेंगे। हमारी समझ में नहीं आता कि हम उन्हें किस रीति से समझायें?''

रानी बोली, ''देखो, जैसा मैं कहूं, वैसा करो।''

कारीगर बोले, ''आप जैसा भी कहोगी, वैसा ही करने को तैयार हैं। वैसे हम तंग आकर उज्जैन नगरी छोड़कर चले जाने को भी तैयार हैं। हमारे तो सोचते-सोचते नाक में दम आ गया। तीन दिन की अवधि तो कल पूरी हो जाएगी। राजा जी या तो हमें देश-निकाला दे देंगे या फिर जेल में ठूंस देंगे।''

रानी बोली, ''सुनो, तुम घबराओ नहीं। तुम सभा में राजा जी से यही कहना कि हे महाराज हम सब परकोट चुनने के लिए तैयार हैं। जैसा आप चाहते हैं वैसा ही परकोट। पहले कंगारे और बाद में कोट। परंतु एक बात है कि आप हमसे भूखे पेट काम करने की आशा नहीं रख सकते। इसी लिए आप हमें नित्यप्रति अनाज देने का बंदोबस्त करवाने की आज्ञा फरमाएंगे। आपसे हमारी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि हम जैसा कहें उसी प्रकार हमें अनाज के दाने तोलकर देने का आप हुक्म फरमावें। जब राजा तुम्हारे कहे-अनुसार तुम्हारी शर्त को मंजूर कर लें तो तुम सब मेरे पास वापस आना। मैं तुम्हें फिर समझाती हूं कि तुम परकोट बांधने के बारे में बेधड़क होकर 'हां' भर लेना। तुम घबराना नहीं, किसी बात की चिन्ता मत करना। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि तुम्हारा बाल भी बांका न होगा। केवल तुम्हें परकोट बांधने के लिए राजा के सामने 'हां' भर लेनी है।''

कारीगर और मिस्तरी बोले, ''रानी जी, हम राजा द्वारा दंडित नहीं होना चाहते। एक बार राजा के सामने 'हां' भर कर हम पीछे मुड़ना नहीं चाहते। ऐसा करने से तो राजा जी के क्रोध का पार नहीं रहेगा।''

रानी बोली, ''तुम फिक्र न करो। बिलकुल चिन्ता न करो। बेधड़क होकर जाओ। मैं चाहती हूं कि राजा जी और समस्त राज्य सभा यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देखकर दंग रह जाए कि कारीगरों ने परकोट बांधना स्वीकार कर लिया है और 'हां' भर ली है और परकोट भी जैसा कि राजाजी चाहते हैं। कंगारे पहले और परकोट बाद में। सारे शहर में अचम्भा फैल जाएगा।''

कारीगर, मिस्तरी और सिलावट इत्यादि के ये पांच मुखिया रानीजी को आदरपूर्वक नमन करके वहां से धीरे-धीरे चल दिये और फिर राजाजी के महलों में बात करते-करते पहुंच गये।

एक अगुआ बोला, ''कहीं रानीजी हमें दगा तो नहीं दे रही हैं?''

दूसरा बोला, ''नहीं रे नहीं। राजा वीर विक्रम को भी चौकड़ी भुला दें, ऐसी रानी हैं। क्या बात करता है तू?''

तीसरा बोला, ''ठीक बात है, रानी जी पर हमें किसी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए।''

चौथा बोला, ''रानी जी को जिस प्रकार का कोट चुनवाने के लिए राजा जी ने कहा वह मैंने पूरी तरह नहीं सुना।''

पांचवां बोला, ''कोई बात नहीं भाई, तुमने सुना हो या नहीं, यह तो राजा लोगों का मनोविनोद है। यदि इस मनोविनोद की हम लोग पूर्ति नहीं कर सके तो हम मारे जायेंगे।''

पहला अगुआ बोला, ''नहीं-नहीं, इसमें मरने की कोई बात नहीं। तुम देखना, रानी जी की बुद्धि और चतुराई के सामने राजा वीर विक्रम मुंह की खायेंगे। तुम तो सब जानते ही हो कि रानी जो भारी से भारी समस्या का हल पलक मारते ही ढूंढ़ निकाल लेती हैं। मैं मानता हूं कि हम सबकी अक्ल तो चकरा रही है। पर देखना, जो काम हम नहीं कर सकते वही काम करने की राह हमें रानी जी सुझा देंगी। और थोड़ी-बहुत तो अभी समझा ही दी है।''

बाकी के चार अगुआ एक स्वर में बोले, ''हां, यह बात तो है।''

3

किसी तरह तीसरा दिन भी आ गया और चौथे दिन का प्रभात भी हो गया। राजा वीर विक्रम की सभा में वह सब-के-सब मिलकर जा पहुंचे।

समय होते ही वहां राजा वीर विक्रम सभा में प्रवेश किया। दरवाजे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर नौबत बजी। शहनाइयां गूंजीं और सारी-की-सारी सभा उठ खड़ी हुई। सब-के-मुंह से एक-स्वर में निकला— महाराजा वीर विक्रम की जय। इस जय-जयकार से सभा गूंज उठी।

राजा के पीछे-पीछे रानी चतुरा धीमे-धीमे पांव से चलती हुई आ पधारीं। राज-सिंहासन पर राजा और रानी अपने आसन पर बैठ गये। बाकी की सारी जनता नीचे बैठ गई।

राजा ने मंत्री से पूछा, ''कहो, सारे-के-सारे कारीगर, मिस्तरी इत्यादि और उनके मुखिये हाजिर हैं।''

मंत्री ने उत्तर दिया, ''हां महाराज, हाजिर हैं।''

राजा विक्रम बोले, ''हमने अब तक तुम सब लोगों को सोचने का अवसर दिया था। अब हम तुमसे पूछते हैं कि कोट बांधने के बारे में तुम्हें हां कहना है या ना? तुम्हारे उत्तर का आज अन्तिम दिन है।''

मंत्री बोला, ''भाइयो, राजा जी ने नगर के लिए जिस प्रकार का कोट बंधवाने की इच्छा तुम्हें प्रकट की है उस प्रकार का कोट बांध सकते हो या नहीं, इस बात का उत्तर तुम्हें आज देना है। बोलो, तुम्हारा उत्तर हां है या ना?''

जैसे ही मंत्री ने यह बात कही, पहला अगुआ खड़ा हुआ और बोला, ''उस प्रकार का कोट बांधने को हम तैयार हैं।'' यह कहते समय सारे कारीगर और मिस्तरियों के मुंह पर आनन्द-सा छा गया था।

कारीगर का जवाब सुनकर राजा सहसा चकित रह गये। उन्होंने स्वप्न में नहीं सोचा था कि कारीगरों की ओर से ऐसा उत्तर मिलेगा। वह (उबलकर) बोले, ''ठीक है, कल से काम शुरू कर दो।''

कारीगर बोले, ''महाराज, काम तो आप जब कहेंगे, उसी समय हम शुरू करने को तैयार हैं, परन्तु आप हमारे खाने-पीने का बन्दोबस्त भी तो कुछ विचारिए। हम भूखे पेट आखिर किस तरह काम कर सकते हैं? जिस तरह का परकोट आप बंधवाना चाहते हैं वैसी ही मजदूरी भी हमें मिलनी चाहिए।''

राजा बोले, ''बोलो, तुम्हें क्या चाहिए? मैं करने को तैयार हूं। तुम्हें अनाज चाहिए? जितना तुम्हें चाहिए उतना राजकोट से तुम्हें मिल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जाएगा।''

कारीगर बोले, ''महाराज, हमें और कुछ नहीं चाहिए। केवल इतना ही चाहिए कि हमें रोज-के-रोज अनाज के दाने दे दिये जायें। पर जो भी अनाज के दाने दिए जाये, पूरी-पूरी पाली भर कर और हम जिस ढंग से चाहें उस तरह दे दिये जायें। इस तरह का हुक्म यदि आप राज-कोठारी को फर्मा देंगे तो आपकी कृपा होगी। कारण यह है कि जैसा काम वैसी ही उसकी मजूरी। जैसा परिश्रम वैसा ही उसका भुगतान भी होना चाहिए।''

राजा बोले, ''स्वीकार है। मैं राज-कोठारी को ऐसा ही हुक्म दे देता हूं। जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही नित्य प्रति तुम्हें वह अनाज तोलकर तुम्हारी इच्छानुसार पाली भर कर दे देगा।''

सभा में एक प्रकार कौतूहल-सा फैल गया।

राजा ने राज-कोठारी को बुलाकर हुक्म दे दिया, ''इन कारीगरों, सिलावटों, मिस्तरियों, शिल्पियों और मजदूरों को जितना चाहिए उतना अनाज कोठार से रोज के रोज भर के तुम्हें दे देना होगा जिस रीति से ये चाहें उसी रीति से तुम्हें अनाज दे देना है।''

राज-कोठारी ने हाथ बांधे स्वीकार कर लिया।

सभा विसर्जित हुई। राजा और रानी महलों में चले गये। कोट बांधने की बात समस्त शहर में फैल गई। नगर निवासियों के अचम्भे का पार न था। थोड़ी देर बाद रानी चतुरा राजा विक्रम की आज्ञा लेकर रनवास में चल दीं।

वही पांच मुखिये रानीजी के पास पहुंचे।

रानी जी बोलीं, ''शाबाश, काम तो तुमने बहुत ही सुन्दर ढंग से जैसा मैं चाहती थी, कर दिया है। मैं तुमसे बहुत खुश हूं। अब सुनो, कल तुम्हें जो करना है, वह बताती हूं। जिस समय कोठारी तुम्हें अनाज भर-भर कर देना आरंभ करे उस समय तुम उससे वही कहना कि पहले तराजू का कांटा निकालो और फिर पलड़ों से भरो और तोल कर दो और यदि कोठारी तुम्हारे कहे अनुसार न करे तो तुम अनाज लेने से इन्कार कर देना।''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सबके सब कारीगर, मिस्तरी, सिलावट, शिल्पी इत्यादि मन-ही-मन खुशी से नाच उठे। रानी की इस बुद्धि प्रखरता पर वे मंत्र-मुग्ध हो उठे। सब-के-सब खुशी-खुशी रानी चतुरा के यहां से लौट आये।

दूसरे दिन कारीगरों, सिलावटों, शिल्पियों का टोला राज-कोठार के आंगन में जाकर जमा हो गया। स्त्री, पुरुष और मजदूरों ने अपनी-अपनी ओढ़नी, टोपियां और चादरें इत्यादि वहां आंगन में बिछा दीं।

कोठारी आया, उसने कोठार के द्वार खोले और थोड़ी देर बाद अनाज तराजू में भरने लगा।

कोठारी बोला, "चलो, अपनी-अपनी चादरें फैलाओ, ओढ़नियां फैलाओ और अनाज लेना शुरू करो।"

पहला मुखिया बोला, "हम इस तरह अनाज नहीं लेंगे।"

कोठारी बोला, "तो किस तरह लोगे?"

सब-के-सब कारीगर बोले, "पहले अपनी तराजू का कांटा निकालो, फिर पलड़ा भरो और हमें तोलकर दो तो हम लेंगे।"

कोठारी बोली, "कांटा निकालने के बाद मेरे लिए तोलना किस तरह संभव हो सकता है? पलड़े में अनाज यदि भर भी लूंगा तो बिना कांटे के तोल कैसे सकूंगा?"

कारीगर बोले, "यह हम नहीं जानते। जिस तरह तुम तोल रहे हो उस तरह तोला हुआ अनाज हमें नहीं चाहिए। हम जिस तरह कहते हैं उस तरह अनाज पलड़े में भरकर तोला जायेगा तो ही हम लेंगे। तुम्हें मालूम है कि हम ऐसे कारीगर हैं कि पहले कंगारे बनायेंगे और बाद में कोट!"

कोठारी सुनकर बोला, "तुम्हें लेना हो तो लो, नहीं तो मुझे कोई गरज नहीं। मूर्खों की सी बात कर रहे हो कि पहले कांटा निकालो और पीछे पलड़े में अनाज भरकर तोलो और दो। वाह! तुम खूब कारीगर हो।" कोठारी ने मुंह बिगाड़ लिया।

पहला मुखिया बोला, "हां, हमें इस तरह नहीं लेना। तुम राजा से जाकर साफ कह दो कि हम लोग इस तरह तोला हुआ अनाज लेने से इन्कार कर रहे हैं। जाओ, अभी कह दो।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कोठारी सीधा राजा के पास पहुंचा और राजा से सब बात कह डाली।

राजा बात सुनकर समझ गये। मन-ही-मन गड़-से गये। भगवान, यह तो कान पकड़ने की सी बात हो गई। ठीक वैसी ही बात हो गई जैसे मुंह से थूका हुआ गले पर जाकर पड़े। हारने की सी बात हो गई। रानी की बुद्धि का अब क्या किया जाए? अब तो हार स्वीकार ही करनी पड़ेगी। वाह रानी चतुरा वाह! धन्य है तुम्हारी बुद्धि को! धन्य है तुम्हारी चतुराई को!

इस तरह राजा विक्रम रानी का मन-ही-मन बखान करने लगे। कुछ देर ठहर कर राजा ने हुक्म दिया—"जाओ! सारे कारीगरों, मजदूरों और सिलावटों इत्यादि को यही भेज दो। उनसे कहना कि राजा जी बुलाते हैं।"

कोठारी ने वैसे-ही-वैसी सूचना जाकर कारीगरों और मजदूरों को दे दी।

कारीगर, मजदूर, सिलावट इत्यादि का टोला कोठार के सामने से उठकर राज महल में पहुंचा। वहां वीर विक्रम बैठे थे। यहां आकर यह टोला चुपचाप खड़ा हो गया।

राजा विक्रम आग बबूला हो रहे थे। अपने पैरों को पछाड़ रहे थे। अपनी मुट्ठियों को कसकर बांधे हुए थे। आंखों से चिनगारियां-सी बरस रही थीं। सारे कारीगरों और मिस्तरियों ने अच्छी तरह देख लिया कि राजा गुस्से में भरे बैठे हैं।

राजा ने इस टोले को देखते ही दहाड़-सी मारी, "क्या बात है? अनाज क्यों नहीं लेते? कहां है तुम्हारा मुखिया?"

मुखिया आगे आया और कांपता हुआ हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। फिर महाराजा को आदरपूर्वक नमन करके उसने जवाब दिया, "अन्नदाता अनाज लेने की हमें ना नहीं है, परन्तु पहले तराजू का कांटा निकलवा दें और पीछे पलड़ा भरकर हमें तोल कर अनाज दे दिया जाए तो हम सब-के-सब लेने को तैयार हैं। हमारा अपराध क्षमा हो। हमारी यही शर्त है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा बोले, "पहले कांटा किस तरह निकल सकता है? यदि निकल भी गया तो बिना कांटे के किस तरह तोला जा सकता है?"

मुखिया बोला, "तो महाराज पहले कंगारे कैसे निकल सकते हैं? यदि पहले कांटा नहीं निकल सकता तो पहले कंगारे किस तरह बनाये जा सकते हैं? यदि आप हमारी रीति के अनुसार अनाज तुलवा कर दिलवा सकते हैं तो हम भी उस ही रीति से आपका परकोट चुन सकते हैं। आप हमारी शर्त के अनुसार अनाज तुलवा कर रोज-के-रोज दिलवा दीजिए, हम भी आपकी इच्छानुसार परकोट बांध कर दिखला देंगे।"

राजा का मुंह फक पड़ गया। वह मन में सोचने लगे कि इनके पीछे किसका हाथ है? और तुरन्त ही वह समझ गए कि हो न हो, रानी चतुरा ने ही इनको यह सूझ-बूझ दी है और यह मंत्र फूंका है। स्वयं की बात को पीछे लेने का अवसर आ गया था और हार सामने नजर आ रही थी। कोई उपाय भी नहीं सूझ रहा था। उन्होंने सब कारीगरों और मजदूरों को बैठ जाने को कहा और फिर अपने एक दास को रानी चतुरा को बुलाने के लिए दौड़ाया।

थोड़ी देर बाद रानी भी आ पहुंचीं।

राजा बोले, "रानीजी, यह कारीगर, मिस्तरी, सिलावट, मजदूर इत्यादि तो परकोट बांधने के लिए ना कहते हैं।"

रानी बोली, "ना कहने की तो कोई बात ही नहीं। इन्होंने तो आपके सामने हां भरी थी?"

कारीगर बोले, "क्यों भाइयो, क्या तुमसे राजा की इच्छा जैसा परकोट नहीं बन सकता?"

कारीगर, मजदूर और मुखिया सब ने सारी बात रानी चतुरा को कह सुनाई।

रानी बोलीं, "हां, अब तो न्याय आपको तोलने का करना है। न तो इनकी ओर से कोई ना है और न ये अपनी कही हुई बात से डिग ही रहे हैं। आप कहें तो ये तैयार हैं। यदि ना कहें तो इनकी ओर से भी 'न' है। परकोट बंधवाना या न बंधवाना अब तो आपके ही हाथ की बात है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा विक्रम निरुत्तर देखते रहे। कुछ देर बाद वह बोले, "मैं यदि तुम्हें तुम्हारी इच्छा के अनुसार अनाज तोल कर दूं तो क्या तुम परकोट बांध सकते हो?"

समस्त कारीगर और मिस्तरी बोले, "महाराज, यदि आप अपनी शर्त का पालन कर सकते हैं तो हम भी अपनी शर्त का पालन करेंगे।"

राजा बोले, "यह तो एक प्रकार से दूसरे अर्थों में तुम्हारी 'न' ही है। तो मैं समझ लूं कि तुम यह काम नहीं कर सकते?"

कारीगर और मिस्तरी बोले, "यह तो आपके परकोट नहीं बंधवाने की बात है। इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। जैसा परकोट वैसी मजूरी तो हमें मिलनी ही चाहिए, महाराज!"

राजा हारकर बोले, "रानी चतुरा ने हमें दूसरी बार हराया है। हम अपनी हार को स्वीकार करते हैं।"

कुछ देर बाद राजा रानी चतुरा की बुद्धि-प्रखरता का बखान करने लगे। परन्तु उनके मन में रानी की यह युक्ति खटकती रही। ऊपर से तो कुछ रानी का गुणगान करते रहे पर मन-ही-मन वह सोचने लगे कि 'जब तक मैं रानी चतुरा को एक बार न हरा दूं तो मेरा नाम राजा विक्रम कैसा?'

राजा की युक्ति और सारी योजना धरी-की-धरी रह गई थी। कंगारे पहले और परकोट बाद में चुनवाने की बात रानी चतुरा ने अपनी चतुराई से टाल दी थी।

राजा विक्रम कोई-न-कोई दांव खेलने का मन में विचार कर रहे थे।

एक दिन की बात है।

रानी जरा हँसी।

राजा ने तत्काल पूछा, "क्या बात है? अचानक हँसी कैसे आई? मैंने जैसा परकोट बंधवाना चाहा था वैसा परकोट यदि तुम बांध कर दिखा देतीं तो तुम्हारी वाह-वाह थी, परन्तु तुमने तो बात को ही टाल दिया।"

रानी हँसी रोकते हुए बोली, "बुद्धि की लड़ाई बुद्धि से ही लड़ी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जाती है, महाराज!''

राजा बोले, ''बुद्धि की ही यदि बात थी तो कुछ करके दिखातीं। बुद्धि की रोटियां किस काम की? कोई खा नहीं सकता। भूखा ही रह सकता हूं। यदि बुद्धि से तुम परकोट बांध कर दिखा देतीं तो तुम धन्य कहलातीं।''

रानी बोली, ''पर आपने वैसा परकोट फिर बंधवाया क्यों नहीं? आपको किसने रोका था।''

राजा बोले, ''पहले परकोट बांधकर दिखाओ, पीछे बात करो।''

रानी बोली, ''क्यों नहीं बंध सकता परकोट? आपको बंधाना हो तो बंध भी सकता है। मैं तो तैयार हूं।''

राजा बोले, ''मुझे उसी रीति का कोट बंधवाना है। वैसा यदि बंधवा सकती हो तो बात करो। चालाकी से बात को टाल देना और होता है और चालाकी में तुम्हारा मुकाबला नहीं।''

रानी मुसकराई और बोली, ''आप यह तो जानते ही हैं कि कारीगरों और मिस्तरियों को कैसा अनोखा और कितना कठिन काम करना होगा। आपने अपनी बुद्धि से जो रचना रची है उसी के अनुसार काम भी तो करना है।''

राजा बोले, ''कुछ भी हो, मेरे मुंह से तो जो बात एक बार निकल चुकी है उसे मैं वापस नहीं ले सकता। उज्जैन नगरी के लिए मुझे सचमुच परकोट बनवाना है। परन्तु उसी रीति से जो मैं प्रकट कर चुका हूं। जब तक वैसा परकोट नहीं बंधेगा तब तक मुझे चैन नहीं मिलेगा।''

रानी बोली, ''तो आप लोगों को तरीका तो बताइये न, ताकि काम शुरू हो सके।''

राजा बोले, ''मेरी बुद्धि तो चलती ही नहीं, लोगों को क्या खाक बताऊं।''

रानी बोली, ''तो मैं बंधवा कर दिखा दूं।''

राजा एकदम खिल गये और बोले, ''अवश्य। बंधवा कर दिखाओ तो मान जाऊं। इतनी देर से और मैं कह क्या रहा हूं? इतने दिनों से मेरी और इच्छा है ही क्या?''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रानी बोली, "ठीक है। निश्चिंत रहें। आपकी इच्छानुसार परकोट बंध जायेगा।"

राजा मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। उनके हर्ष का पार न था। कारण कि पहले कंगारे चुनने और पीछे कोट। वह नहीं समझ पा रहे थे कि इस तरह काम रानी कैसे कर सकेंगी।

रानी ने परकोट बंधवाने की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी। यह बात सारे राज्य में फैल गई।

रानी की अक्ल की वाह-वाह होने लगी। दूसरे दिन रानी ने कारीगरों, मिस्तरियों, सिलावटों और उनके मुखियों इत्यादि को बुलवाया।

कारीगर, मिस्तरी और नगर-निवासी रानी की अक्ल और उनके निश्चय का अनुमान लगाकर दंग रह गये थे। वे यही सोच रहे थे कि रानी आखिर हैं तो राजा विक्रम की ही। वह राजा के मुंह से निकली हुई बात की आबरू रखना चाहती हैं और काम करके सिद्ध कर देना चाहती हैं।

पहला मुखिया आया उसने रानी को नमन किया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

रानी बोली, "सुनो भाई, राजाजी ने जो बात मुंह से निकाली है उसको हमें पूरा करके दिखाना है। यदि हम करके नहीं दिखा सके तो उज्जैन नगरी का कभी परकोट नहीं बंधेगा।"

मुखिया बोला, "यह तो सब ठीक है, रानी जी, किन्तु वह परकोट किस रीति से बांधा जाए?"

रानी बोली, "देखो मैं तुम्हें बताती हूं। तुम्हें नक्शा भी दूंगी। जैसा कहूंगी वैसा तुम्हें करना होगा। तुम्हें जंगल में से बड़ी-बड़ी लकड़ियां लानी होंगी। मोटे-मोटे लकड़ों के पाटिये चिनवाने होंगे। इसके बाद जैसे-जैसे मैं बताती जाऊं, उस तरह काम शुरू करना होगा।"

मुखिया बोला, "किस तरह? हमें पूरी बात समझाइए न, रानी जी।"

रानी बोली, "मोटे-मोटे और भारी-भारी लट्ठों पर पाटिये जोड़ने होंगे। लोहे के सरियों को गांठना होगा और फिर इन सरियों पर ही कंगारे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चुने जायेंगे। रोज दस हाथ चुनाई होने पर नीचे से पायों को उखाड़ते जाना होगा। उनकी जगह नींव से चुनाई शुरू करते-करते और दीवार को उठाते-उठाते कंगारों तक ले जाना होगा। कंगारों को फिर दीवार का सहारा मिल जायेगा। इस प्रकार दस-दस हाथ कोट तुम लोग तैयार करोगे और इस प्रकार सारा परकोट कुछ समय बाद तैयार हो जायेगा।''

मुखिया सारी बात समझ गया। वह खुशी से खिल उठा। उसने काम चालू करवाना स्वीकार कर लिया। अन्य लोग भी खुश हो घर लौट आये। घर पहुंचने पर उसने सारे कारीगरों, मिस्तरियों, सिलावटों और शिल्पियों को रानी की योजना समझाई। उसने खातियों को भी बुलवाया क्योंकि उनका भी बहुत-कुछ काम था। उसने उन्हें समझाया कि मोटे-मोटे लट्ठों का एक मंच बांधना होगा। इन लट्ठों पर पाटिये ठुकवाने होंगे और फिर लोहे के सरियों पर कंगारे चुनने होंगे।

सब-के-सब एक स्वर में बोले, ''हां, इस रीति से यह काम अवश्य हो सकता है।''

मुखिया ने सम्पूर्ण बात समझा कर उन्हें अपने यहां से विदा कर दिया।

रानी ने राजा की सारी बात कह डाली और बताया कि चुनने का काम कल से शुरू हो जायेगा।

राजा ने खुशी-खुशी सब इंतजाम कर डाला। मोटे-मोटे पाटियों से छोटे-छोटे पाटिये तैयार करवाये गये। पाटियों को परस्पर ठोक कर भारी-भारी थमों से जोड़ दिया गया और फिर सरिये ठोककर ऊपर ही ऊपर के पाटियों से इन सरियों पर कंगारों की चिनाई का काम शुरू करवा दिया गया। कंगारों का काम जैसे ऊपर ही ऊपर शुरू हुआ वैसे ही नीचे के पायों से दीवारों की चुनाई शुरू कर दी गयी। इस चुनाई को ऊपर-ही-ऊपर के पाटिये तक ले जाया गया। लोग इस पहली दस हाथ चुनाई को देखकर दंग रह गये। यहां तक कि राजा भी आश्चर्य-चकित रह गये। रानी सफलता पर मन-ही-मन गर्व अनुभव कर रही थी।

दस हाथ कंगारे पूरे होते ही और तत्काल पायों में से दीवार की चुनाई शुरू कर दी जाती थी और उसे कंगारों से मिला दिया जाता था। इस तरह दस-दस हाथ काम होता जा रहा था। इस प्रकार कोट की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE